ओ३म्

सत्यार्थ-सन्देश

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास

नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर-313001 (राज.)

₹१०

श्री राम का उदात्त आदर्श

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,

हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।

निज-रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,

सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को।

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,

जन सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।

हो जाँय अभय वे जिन्हें कि भय भासित हैं,

जो राक्षस-कुल से मूक सदृश शासित हैं।

मैं आया जिसमें बनी रहे मर्यादा,

बच जाँय प्रलय से मिटे न जीवन सादा।

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

राष्ट्र कवि - मैथिलीशरण गुप्त

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को अपने आँचल में समेटे, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए, पठनीय और समर्पित

सत्यार्थ – सन्देश

प्रमुख संरक्षक – सत्यार्थ–सन्देश

महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)

डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमांसक

आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय

डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री

डॉ.सोमदेव शास्त्री

डॉ. रघुवीर वेदालंकार

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

संपादक

अशोक आर्य

सहयोग ◆ भारत	विदेश
संरक्षक – ११००० रु.	$ 1000
आजीवन – १००० रु.	$ 250
पंचवर्षीय – ४०० रु.	$ 100
वार्षिक – १०० रु.	$ 25
एक प्रति – १० रु.	$ 5

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें।
अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, उदयपुर
खाता संख्या : ३१०१०२०१००४१५१८
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

सृष्टि संवत्
१९६०८५३११२
वैशाख कृष्णा प्रतिपदा
विक्रम संवत्
२०६१
दयानन्दाब्द
१८९

सत्यार्थ संदेश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

मर्यादा पुरुषोत्तम

०९ | श्रीराम

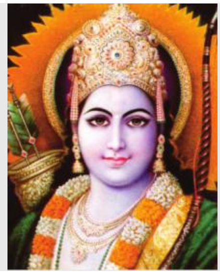

१४ | नित्य अग्निहोत्र अवश्य करें

०७ | टूटते परिवार दरकते रिश्ते

सरोकार
पर्यावरण
प्रदूषण

२५
दलितोद्धार और आर्य समाज

१७
चतुर्वेदविद् सचिवोत्तम
श्रीहनुमान

समाचार २२

२३ हलचल

०४ वेद सुधा
२३ प्रतिस्वर
२८ १८५७ की क्रांति का प्रथम शहीद
२८ दयानन्द का दिव्य विचार
२६ विश्व पृथ्वी दिवस

स्वामी एवं प्रकाशक "श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास" उदयपुर

मुद्रक : चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.), उदयपुर

प्रकाशक

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास

नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) ३१३००१

(०२९४) २४१७६९४ , ९३१४५३५३७९, ९८२८९२६७४७

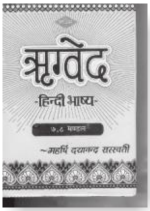

ओ३म्

वेद सुधा

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।। ऋग्वेद १०.११७.६

भावार्थ- मूर्ख व्यक्ति मुफ्त के भोजन की लालसा करता है। जो अपने किसी हितैषी वा साथी का पोषण नहीं करता, उसका ऐसा व्यापार उसके नाश का कारण होता है। जो अकेला खाने वाला है वह केवल पाप का भागी होता है। मैं सत्य कहता हूँ (वेद)

व्याख्या- मनुष्य जीवन के दो बड़े विभाग हैं- एक भोग और दूसरा कर्म। प्रश्न यह है कि इन दोनों का महत्त्व समान है अथवा एक गौण है दूसरा मुख्य? यदि ऐसा है तो मुख्य कौन है और गौण कौन? तुलसीदास का कहना है कि-

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।।

अर्थात् कर्म प्रधान है और भोग गौण। अब तनिक अपनी प्रवृत्तियों पर भी विचार कीजिए। आपका मन क्या गवाही देता है? आपने एक घोड़ा मोल लिया। उससे कुछ काम लेंगे और कुछ उसे भोजन देंगे। उसे कुछ करना है और कुछ भोगना है। आपको सवारी देना उसका कर्म है, दाना-घास खाना उसका भोग है। इन दोनों में से मुख्य कौन है और गौण कौन? आप चूँकि भोजन देते हैं इसलिए काम लेते हैं, अथवा काम लेते हैं इसलिए भोजन देते हैं। आपकी प्रथम भावना क्या थी और दूसरी भावना क्या हुई? आप कहेंगे कि हमको घोड़े से काम लेना था, इसलिए हमें उसके खरीदने की इच्छा हुई और चूँकि बिना भोजन दिये काम लेना असम्भव है अतः उसको भोजन भी देते हैं। यदि बिना भोजन दिये आप काम ले सकते तो केवल उसके काम की ही परवाह करते। उसके खाने की नहीं। जो बेगार में काम कराते हैं वे जानते हैं कि बेगारवाला बिना भोजन के भी काम करने पर मजबूर होगा, इसलिए वे उसके भोजन की परवाह नहीं करते। अतः सिद्ध हुआ कि कर्म मुख्य है और भोग गौण। आवश्यक होते हुए भी उसकी आवश्यकता को प्रथमता नहीं दी जा सकती।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध एक बात कही जा सकती है, प्रायः संसार में लोग भोग के लिए ही कर्म करते हैं। यदि भोग की आशा न होती तो कर्म नहीं करते। एक चिकित्सक इसलिए चिकित्सा नहीं करता कि उसे चिकित्सा का ज्ञान या सामर्थ्य है अपितु इसलिए कि उससे आर्थिक लाभ होगा। एक वकील इसलिए वकालत नहीं करता कि वह वकालत के काम में दक्ष है अपितु इसलिए कि उसे पैसा मिलता है। इसलिए लोगों ने अर्थ को ही सर्वोपरि माना है। "सर्वे गुणाः काञ्चनमा श्रयन्ति"- कांचन का अर्थ है भोग।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लैटो (अफलातून) ने अपने ग्रन्थ रिपब्लिक (शासन-तन्त्र) में इस प्रश्न पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह कहता है कि क्या एक अध्यापक इसलिए अध्यापक कहलाता है कि वह अध्यापन का कार्य करता है अथवा इसलिए कि वह अमुक वेतन पाता है? एक डाक्टर को आप इसलिए डाक्टर कहते हैं कि वह डाक्टरी करता है अथवा इसलिए कि वह इतना धन कमाता है? एक सैनिक का सैनिक नाम उसके कर्म के कारण हुआ अथवा उसके वेतन के कारण? यह तो ठीक है कि अध्यापक, वकील, सैनिक या डाक्टर सब जीविका-उपार्जन करते हैं और जीविका के लिए ही काम करते हैं परन्तु यह बात तो सभी में सामान्य है और यदि जीविका-उपार्जन को ही मुख्य माना जाए तो सब एक-से होंगे, विशेषता न होगी तथा प्रत्येक का सम्मान उसकी आर्थिक मात्रा के अनुसार होना चाहिए, परन्तु समाज का ऐसा नियम तो नहीं है। एक रोगी मनुष्य डाक्टर की खोज करता है तो उसकी धनाढ्यता को न देखकर उसकी डाक्टरी की योग्यता को देखता है। ऐसे डाक्टर को बुलाऊँ जो डाक्टरी अच्छी कर सके। यह प्रवृत्ति तुलसीदास के ऊपर के कथन को पुष्ट करती है कि न केवल 'विश्व' नामक परमात्मा ने ही अपितु विश्व-मानवसमाज ने कर्म को भोग पर प्रधानता दी है।

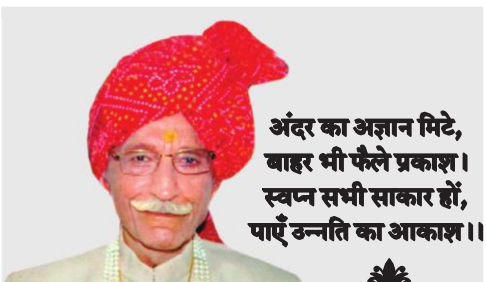

जब इतना निश्चित हो गया तो भोग को कर्म के अधीन रखना होगा;

कर्म को भोग के अधीन नहीं। कर्म आधार है, भोग आधेय है। आधेय बिना आधार के ठहर नहीं सकता इसलिए वेदमन्त्र कहता है "मोघं अन्नं विन्दते अप्रचेताः" अर्थात् मुफ्त का खाने की इच्छा करने वाला मूर्ख है। वह भोग को प्राथमिकता देता है। यह बात सृष्टि-नियम के विरुद्ध है। जिस अन्धेरनगरी में टका सेर भाजी और टका सेर खाजा बिकता था वह नगरी पूरी अन्धेरनगरी न थी। कुछ तो उजाला भी था। पूरी अन्धेरनगरी तो वह होती जहाँ खाजा और भाजी मुफ्त मिला करती और टका कमाने की भी आवश्यकता न पड़ती। डाक्टर डाक्टरी सीखता भी इसलिए है कि उसे पूर्ण विश्वास है कि जिस भोग की उसे आकांक्षा है सृष्टि-क्रम उसको कर्म पर प्रधानता नहीं देता। मूल्य तो उसी चीज का दिया जाता है जो मूल्यवान् हो। कपड़ा अपने मूल्य से बड़ा है। मूल्य का मूल्य भी कपड़े की अपेक्षा से है न कि मूल्य की अपेक्षा से; इसलिए कर्म की प्रधानता है और कर्म की अवहेलना अथवा बिना कर्म के भोजन की इच्छा करना परले दर्जे की मूर्खता है। जिस पुरुष को थोड़ी सी भी बुद्धि है वह ऐसी मूर्खता कभी नहीं करेगा। संसार को काम प्यारा है चाम नहीं।

वेदमन्त्र कहता है "सत्यं ब्रवीमि", इसका तात्पर्य यह है कि यह कोई छोटी बात नहीं है, जिसको सुनी-अनसुनी कर दिया जाए। मानव जीवन के विकास के लिए यह एक अत्यन्त गम्भीर बात है। मुफ्त भोजन खाने की इच्छा विश्वव्यापी और सांक्रामिक रोग है जिसने मानवजाति को सबसे अधिक पीड़ित किया है। हर नर-नारी को इससे सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह मीठा विष है जिसकी हानि को बुद्धिमान् मनुष्य ही सोच सकते हैं। "वध इत् स तस्य" जो इस रोग में फँस गया उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। वह किसी प्रकार बच नहीं सकता।

इस कथन की तथ्यता पर थोड़ा सा विचार कीजिए। मुफ्त खाकर अपने ऊपर परीक्षण कर लीजिए, अथवा दूसरे मुफ्तखोरों के जीवन का निरीक्षण कीजिए। कुदरत को यह अभीष्ट नहीं कि मुफ्तखोरों को रहने दे। थोड़ी देर के लिए सहन अवश्य करती है; वह भी उतना ही जितना हर पाप को। वह मनुष्य को अवसर देती है कि यदि वह स्वयं ही अपनी भूल का अनुभव करे और सुधर जाए तो अच्छा है अन्यथा इसमें दण्डविधान तो काम करता ही है। माता-पिता अपनी सन्तान की निर्बलताओं को यथाशक्ति तथा अत्यन्त सहिष्णुता के साथ सहन करते हैं और बड़ी से बड़ी भूलों की उपेक्षा करते हैं, परन्तु निठल्ली सन्तान से वे भी तंग आ जाते हैं, और उनका स्वाभाविक प्रेम-तन्तु भी टूट जाता है। इसलिए मुफ्तखोरी से बड़ा कोई पाप नहीं और सर्वथा नाश ही उस पाप का एकमात्र दण्ड या प्रायश्चित्त है। इसीलिए वेदमन्त्र ने कहा- "वध इत् स तस्य"। यहाँ 'इत्' का विशेष अर्थ है। मनुष्य की स्वार्थसिद्धि भी तभी होती है जब वह दूसरों के हित की बात सोचता है। व्यवसाय-जगत् पर दृष्टि डालिए। कोई व्यवसाय चल नहीं पाता जब तक उसका आधार परार्थ न हो। कपड़े का व्यापारी दूसरे के हित को दृष्टि में रखकर कपड़े बनाता है। हलवाई दूसरों की रुचि को देखकर मिठाइयाँ बनाता है। आप जितना परहित को दृष्टि में रखकर व्यापार करेंगे उसमें उतनी ही अधिक सफलता होगी। हर व्यवसाय के लिए प्रश्न रहता है कि उसके साफल्य को बाजार (मार्केट) चाहिए। 'बाजार' का अर्थ? यही न कि जिस वस्तु को आप अपने स्वार्थ का साधन बनाना चाहते हैं, उसमें दूसरे मनुष्यों का कितना हित निहित है। इससे विदित होता है कि परोपकार आपका पहला कर्तव्य और ध्येय होना चाहिए।

परोपकार के दो रूप हैं। एक विनिमय अर्थात् जो तुम्हारे साथ जितनी भलाई करे उसका कम-से-कम उतना बदला तो तुम दे ही दो। दस रुपये की चीज पाकर उसको दस अवश्य दो अर्थात् 'मोघं अन्न' (मुफ्त का भोजन) की प्राप्ति मत करो। मत समझो कि चार रुपये में दस का माल मिल गया तो तुम लाभ में हो। ये मुफ्त के छह रुपये जिसको तुम लाभ समझते हो, अन्त में तुम्हारे नाश का कारण सिद्ध होंगे। व्यवसाय में जिसको चालाकी और धोखाधड़ी कहा जाता है वह व्यवसाय की अवनति का कारण होता है। जब सत्य के आधार पर समस्त जगत् की स्थिति है (सत्येनोत्तभिता भूमिः-ऋग्वेद १०-८५-१) तब व्यवसाय तो जगत् का ही एक छोटा-सा अंश है, असत्य पर कैसे टिक सकता है? कहते हैं कि व्यापार की सफलता के लिए साख चाहिए। साख का अर्थ ही यह है कि लोगों को विश्वास हो कि तुम दस रुपये में पूरे दस का माल देते हो। भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में तथा ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक उदाहरणों में सत्य की बड़ी महिमा गाई गई है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह महिमा धर्म-ग्रन्थों और धर्म-उपदेशों तक ही सीमित है, व्यावहारिक-जीवन में उसका प्रयोग बहुत कम है। मैं यहाँ एक ही उदाहरण दूँगा। डर्बन में मुझे एक सुन्दर कम्बल दिया गया। इसमें फैक्टरी की ओर से एक चिट लगी थी, जिसमें लिखा था कि

इस कम्बल में साठ प्रतिशत ऊन है; शेष रूई है। यदि भारतीय फैक्टरी होती तो यह लिखा होता कि इसमें शत-प्रतिशत ऊन है। प्रसिद्धि है कि लन्दन का कुजांड़ा आपको स्पष्ट कह देगा कि अमुक सेव खट्टा है। क्या प्रयाग और काशी में भी ऐसे कुंजड़े मिलेंगे? सुना है कि इंग्लैण्ड आदि देशों में दूध में पानी मिलाकर बेचते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि 'इतना दूध है और इतना पानी', क्योंकि पानी मिला दूध पचाने के लिए हलका समझा जाता है। क्या भारत में कोई हलवाई ऐसा करेगा? क्या भारत के व्यवसाइयों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ''मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः''? (मूर्ख व्यक्ति ही मुफ्त का भोजन पाने की लालसा करता है)

परोपकार का दूसरा रूप है दान। जब आप मूल्य का विनिमय करते हैं तो पूरा बदला नहीं दे पाते। पूरे दाम चुकाने पर भी कुछ-न-कुछ रह ही जाता है। मनुष्य स्थूलरूप से तो दूसरों के परोपकार पर जीवित रहता ही है परन्तु बहुत-से परोक्ष, अदृष्ट और सूक्ष्मरूप हैं, जिनका परिगणन कठिन होता है जैसे- आप किसी अन्धेरी सड़क पर जा रहे हैं, किसी पास के मकान से विद्युत्-दीपक की किरणें आ रही हैं; आप इसका मूल्य तो नहीं चुकाते, न मकानवाला आपसे विनिमय माँगता है, परन्तु आपको उससे लाभ अवश्य हुआ है। यहाँ दान का प्रश्न उठता है। यह परोक्ष लाभ भी मुफ्तखोरी होगी यदि आप दान नहीं देते। इसीलिए छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्धों का निरूपण करते समय पहले स्कन्ध में दान को भी शामिल किया है। जो 'मोघं अन्न' के पाप से बचना चाहता है उसे दान देना चाहिए, क्योंकि आपके भोगों में दूसरों की देन है। इसका बदला दान से ही हो सकता है। आपका दान सृष्टि के सूक्ष्म नियमों द्वारा उन तक भी पहुँच जाता है जो आपसे अपने उपकारों का मूल्य नहीं माँगते। जो दान नहीं देता उसके लिए वेद कहता है कि वह ''नो अर्यमणं पुष्यति नो सखायं पुष्यति'' अर्थात् वह अपने किसी हितैषी का पोषण नहीं करता। अर्यमा का अर्थ है परम स्नेही (Bosom friend, देखो मोनियर विलियम्स की संस्कृत डिक्शनरी; 'सखा' का अर्थ है 'साथी' या ''हम-पेशा'' -एक ही काम करनवाले) उसका ऐसा व्यापार उसके नाश का कारण होता है। अन्त में वेदमन्त्र ने दान न देने वाले मनुष्य की घोर निन्दा की है। ''केवलाघो भवति केवलादी'' जो अकेला खाता है उसके पास अन्त में 'पाप' के सिवाय कुछ शेष नहीं रहता अर्थात् उसके समस्त पुण्य क्षीण हो जाते हैं। जब पुण्य क्षीण हो गये तो सुख किसका मिले? पुण्य के क्षीण होते ही सुखों का भी क्षय हो जाता है।

अंग्रेजी की एक कहावत है- दान धन का नमक है (Charity is the salt of riches)। अंग्रेजी शब्द साल्ट का अर्थ है नमक। नमक का अर्थ है फलों को सुरक्षित रखने का साधन। जैसे यदि आप नीबू या आम को कई महीनों तक सुरक्षित रखना चाहें तो उसमें नमक मिलाकर अचार बना लो नीबू या आम बिगड़ेगा नहीं। इसी प्रकार यदि आप अपने धन की रक्षा करना चाहते हैं तो दान देते रहिए। दान से धन बँटता नहीं, बढ़ता है। दान उभयपक्षी हित है। हमसे दान पानेवाले का हित होता ही है, दान देनेवाले का उससे कम हित नहीं होता। इसलिए यास्काचार्य ने दान देनेवाले की 'देव' संज्ञा की है- 'देवो दानाद् वा', दान-दाता देव है। जो दान नहीं देता वह अदेव या असुर है, ''केवलाघः'' है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में दान की महिमा में तैत्तिरीय उपनिषद् का एक सुन्दर उद्धरण दिया है- ''श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्''।- तैत्तिरीय उप. शिक्षा. ११।३

श्री स्वामीजी इसका अर्थ देते हैं, ''श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, लोभ से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिभा से भी देना चाहिए।''

अश्रद्धा और लज्जा से भी देने पर क्यों बल दिया गया? इसका तात्पर्य यह है कि कभी-कभी सात्विक भावनाओं की कमी होने पर यदि मनुष्य किसी पाप की प्रवृत्ति में फँसने लगता है तो समाज का भय उसे दलदल में फिसलने से बचा लेता है और कालान्तर में उसकी सतोगुणी प्रवृत्ति लौट आती है। डूबते को तिनके का सहारा। अश्रद्धा से देते-देते भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। अश्रद्धा और लज्जा से दिया हुआ दान भी दूसरों के उपकार में लगता ही है।
अथर्ववेद में अतिथि-सत्कार के सम्बन्ध में बहुत अच्छा उपदेश है, जो 'केवलादी' के दोष का निरूपण करता है-

'इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति - अथर्ववेद ९-६ (३)-१
अर्थात् जो गृहस्थ अतिथि को बिना खिलाये स्वयं खा लेता है वह घरों की 'श्री' को खा जाता है अर्थात् नष्ट कर देता है। अर्थात् गृह की शोभा इसी में है कि हम अकेले न खाएँ।

(स्मृति शेष) पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय

❑❑❑

दरकते रिश्ते

आत्म निवेदन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही रहता है। समाज के अन्य सदस्यों के साथ वह भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार कर सकता है। सर्वप्रथम वह विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का अर्जन करता है। फिर स्वबुद्धि तथा मनःस्थिति के अनुसार वह क्षमताओं का प्रयोग करता है। वह शक्तिशाली है तो अपनी शक्ति के बल पर अन्यायपूर्वक लूट खसोट भी कर सकता है तो उसी ताकत के सहारे निर्बलों की रक्षा भी कर सकता है। अपने बुद्धि कौशल के सहारे नये नये अविष्कार कर स्वयं को व समाज को सुखी बनाने का प्रयास भी कर सकता है तो इसके विपरीत आचरण कर केवल और केवल अपने सुख को प्राप्त करने के क्रम में औरों को दुःखी कर सकता है। समाज में अनेक प्रकार की मनःस्थिति के लोग आपको मिल जाएँगे। एक वह जो केवल अपना हित चिन्तन करते हैं। रात दिन इस 'मैं' को तृप्त करने में अन्य की हानि करने में उन्हें तनिक भी शंका नहीं होती । दूसरे वे जो अपना हित तो साधते हैं पर अन्यों को नुकसान नहीं पहुँचाते। तीसरे वे जो अन्यों को लाभ पहुँचाने की मानसिकता रखते हैं, इस हेतु प्रयास भी करते हैं पर इस परहित की सीमा वहीं तक है जहाँ तक उनका नुकसान न हो, चौथे इस प्रकार के हैं जो दूसरों का हित करने में आत्मोत्सर्ग करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते। इस चतुर्थ प्रकार के वर्ग से ही समाज का अभ्युदय हुआ है और हो सकता है।

समाज का सदस्य उपरोक्त चारों वर्गों में से किस वर्ग का हो उसका निर्धारण समाज की प्रथम इकाई 'परिवार' में ही होता है। परिवार समाज की सबसे सशक्त इकाई है। मनुष्य निर्माण का कार्य इसी फैक्टरी में होता है। परिवार समाज का ही छोटा रूप है। अन्य के साथ किस प्रकार का व्यवहार व्यक्ति करे उसका अभ्यास परिवार में ही हो पाता है। पुत्र-पुत्री का माता-पिता से संबंध,भाई-भाई का आपसी संबंध,भाई-बहिन का आपसी व्यवहार आगे की दिशा तय करता है। जिस परिवार में ऐसे सदस्यों का निर्माण हो जो एक दूसरे पर जान छिड़कते हों, एक दूसरे के आदर सम्मान के लिए जो अपने कष्टों को फूलों की सेज समझते हों,परिवार में दूसरे सदस्य की भावना को ठेस पहुँचाना जिनके निकट मृत्यु के समान हो ऐसे परिवारों में ही चौथे वर्ग के मनुष्यों का निर्माण होता है। उनका स्वभाव ही इस प्रकार का बन जाता है कि परिवार से इतर सदस्यों से भी कमोबेश ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

सौभाग्य से भारतीय परिवार इस दृष्टिकोण से समृद्ध रहे हैं। जहाँ पत्नी-पति,सासु,श्वसुर,पुत्र-पुत्री के लिए हर प्रकार का त्याग करने में प्रसन्नता का अनुभव करती है, वहाँ पत्नी के सम्मान के लिए पति दुनिया भर से भिड़ने का साहस रखता है। भाई की कलाई का नन्हा सा धागा बहिन के हर संकट के समय छाया के रूप में उसकी रक्षार्थ खड़े रहने का संकल्प दोहराता रहता है तो बहन हर क्षण पीहर पक्ष के प्रत्येक सदस्य की चहुँमुखी उन्नति की कामना करती रहती है। जहाँ भाई एक और एक दो नहीं, हर आपदा में ११ बन जाते हों,वहाँ सिर्फ 'इन्द्रों' (जो जीव मात्र के सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख समझें)का ही निर्माण संभव है 'अराव्ण'(कृपण,अनुदार,स्वार्थी केवल स्वयं की सोचने वाला) का नहीं।

रामायणकालीन राज-परिवार महान् आदर्श के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। राम का कोई दोष नहीं था और न ही कोई अयोग्यता उनके अन्दर थी। पर पिता की इच्छा मात्र जानने पर १४ वर्ष के लिए वन जाने का निर्णय करने में उन्हें एक क्षण की देर नहीं लगी थी। सीता राजकुमारी थीं-राजवधू थीं, सुख-सुविधाओं का बाहुल्य उन्होंने चारों ओर देखा था,परन्तु समय उपस्थित होने पर पति की अनुगामी बन कष्ट-कंटकों से भरा जीवन अपनाने हेतु हठपूर्वक अपनी बात मनवाती हैं। लक्ष्मण को तो वन जाने की आज्ञा नहीं मिली थी,पर बड़े भाई राम की सेवा के लिए राज-वैभव को ठोकर ही नहीं मारी वरन् अपनी युवा पत्नी से १४ वर्ष के लिए पृथक् रहने की व्यथा भी सहन कर ली। अब सारा वैभव भरत के लिए है पर उसे स्वीकार नहीं। वह राम को लौटा लाने चित्रकूट जाते हैं। राम - भरत दोनों अपने अपने तर्क रखते हैं कि राज्य दूसरा करे। वाह, क्या अनुपम दृश्य था।

कवि ने भी खूब लिखा-

राजतिलक की गेंद बनाकर खेलन लगे खिलाड़ी,
इधर राम और उधर भरत,दोनों ने ठोकर मारी
शिक्षा दे रही जी हमको रामायण अति प्यारी।

ऐसा दृश्य ढूढ़ने से भी क्या विश्व इतिहास में मिलेगा? यही चरित्र भारत की ताकत रही है। पर आज परिस्थिति बदल रही है। यही ताकत कमजोर हो रही है। परिवार नामक संस्था कमजोर हो रही है,बिखर रही है और तथाकथित प्रगतिशीलों की दृष्टि में तो महत्वहीन हो रही है। 'परिवार' के दो सर्वप्रथम शिल्पकारों व सदस्यों के विचार ही परिवर्तित हो रहे हैं।

जन्म–जन्मान्तर का साथ अब विवाह–विच्छेद का विकल्प ध्यान में रख सृजित हो रहा है। ऐसे में जहाँ विध्वंस के विनाशकारी बीज के साथ सृजन होगा तो उस कृति का अस्तित्व कितना दीर्घ होगा यह भगवान भरोसे ही है। दोनों घटकों का 'आत्म निर्भर' होना सकारात्मक हो सकता है पर आज सहिष्णुता व सामञ्जस्य की हत्या कर रहा है। तथाकथित 'न्यूक्लियर परिवार' की अवधारणा ने अशक्त होते जा रहे परिवार के वृद्धों को हाशिये पर ला खड़ा किया है,ऐसे में पितृ–श्राद्ध व पितृ–तर्पण का क्या स्थान होगा समझा जा सकता है। इस सबमें अब परिवार उदात्त संस्कार की निर्मात्री संस्था के रूप में महत्वहीन होती जा रही है। अतः अब राम पैदा नहीं होते। चतुर्थ वर्ग के 'इन्द्रों' का निर्माण अब कैसे हो? इसीलिये समाज में भी प्रथम वर्ग के 'अराव्ण' मानसिकता के सदस्यों की वृद्धि हो रही है। अब निर्माण शाला ही अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील नहीं है तो यह होना ही है। रिश्ते दरक रहे हैं । जिन संबंधों की महिमा का गान अभी हम करके चुके हैं उनके ठीक विपरीत स्थितियाँ रोज अखबारों में शीर्षक बन रही हैं। पिता–पुत्र,भाई–भाई,भाई–बहिन सब रिश्तों में से स्नेह – बाती सूखती जा रही है। जिसकी कभी कल्पना नहीं की थी ऐसे कुछ रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाओं से समाचार पत्र भरे रहते है। कतिपय उदाहरण देखिये।

रिश्ते को कलंकित करने वाले माँ–बेटे को पाँच साल कैद– उदयपुर, सौतेले माँ–बेटे के नाजायज रिश्ते से परेशान होकर तीन वर्ष पूर्व बहू के आत्महत्या करने के बहुचर्चित मामले में शनिवार को कोर्ट का फैसला आ गया। धारा ३०६ के तहत पाँच–पाँच साल की कठोर कैद व तीन–तीन हजार का जुर्माना, दहेज प्रताड़ना के मामले में धारा ४९८ए में तीन साल का कठोर कारावास व एक–एक हजार जुर्माने की सजा सुनाई गई है।

पिता की हत्या, बेटा गिरफ्तार। उदयपुर, गोवर्धनविलास क्षेत्र के चणबोरा काया गाँव में बीती रात बेटे ने वृद्ध पिता की लट्ठ से वार कर हत्या कर दी। निःशक्त पिता बीमार रहता था। गाली देने की बात को लेकर बेटे ने हमला कर दिया था।

संपत्ति के लिए बेटी ने की थी माँ की हत्या ।जोधपुर, चार दिन पहले घर में लगी आग से झुलसी व महात्मा गाँधी अस्पताल में दम तोड़ने वाली वृद्धा संध्या रानी को उसकी बेटी कल्पना ने संपत्ति हड़पने की नीयत से जला दिया था। पुलिस का कहना है कि माँ–बेटी के बीच में मकानों को लेकर विवाद था। ये कतिपय घटनाएँ पवित्र रिश्तों के मध्य टूटन का अनुभव कराने हेतु पर्याप्त हैं।

तार–तार होते हुए रिश्ते – लक्ष्मीनगर–श्रीगंगानगर , में रहने वाली बुजुर्ग महिला ने जब ९ मास कष्ट सहन कर बेटों को जन्म दिया होगा, जब स्वयं रातों को जागकर उन्हें सुलाया होगा तो कभी यह नहीं सोचा होगा कि एक दिन ऐसा भी आएगा कि यही बच्चे उसे वृद्धावस्था में कमरे में बंद कर, ताला लगा ,अकेले तड़पने के लिए छोड़ देंगे।

विद्यादेवी के पति महावीर प्रसाद के चार बेटे हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने माँ को बाँट लिया अर्थात् एक–एक महीने सबके पास रहे ऐसा निश्चय किया । जब एक वर्ष पूर्व विद्यादेवी को लकवा हुआ तो दवा दिलवाना तो दूर घर में कैद कर रात को ताला लगा देते थे ताकि माँ के दर्द से चीखने की आवाज उनकी नींद में विघ्न न डाल सके । श्रीगंगानगर स्थित तपोवन आवेदना संस्थान के अधिकारियों ने मिलकर नर्क से भी बदतर जीवन जी रही बुजुर्ग महिला को संस्थान में पहुँचाया। अब शायद इस माँ को कुछ राहत मिल सके । ऐसे में एक प्रश्न मन में उठे विना नहीं रहता कि श्रवण कुमार जैसे पुत्र की सांस्कृतिक विरासत वाले हमारे प्यारे देश में रिश्ते तार –तार क्यों हो रहे हैं?

चाचा का खूनी खेल – भूमि –विवाद के चलते भतीजे को जिंदा आग में फैंक दिया । उदयपुर के नाई क्षेत्र के बछर गाव की लोमहर्षक घटना यह सोचने को विवश करती है कि जिस राष्ट्र में राम और भरत जैसे चरित्र–नायक हुए हों जिन्होंने चक्रवर्ती साम्राज्य की गेंद बनाकर एक दूसरे के पाले में फैंकी थी तथा जहाँ वर्ष में हर समय कहीं न कहीं राम कथा चलती रहती हो , क्या कारण है कि भूमि के छोटे से टुकड़े के लिए, थोड़ी सी सम्पत्ति के लिये सारे रिश्ते तार–तार कर दिए जाते हैं।

वस्तुतः दिन रात चलती राम कथाएँ स्वर्ग पाने के साधन के रूप में समझी जाने लगी हैं। कथाकार भी इसी स्थिति में प्रसन्न हैं। रामायण के आदर्श पात्र मानव को दिव्य प्रेरणा दे सकें, हम उनका अनुसरण करें, ऐसा कोई प्रयत्न दिखाई नहीं देता। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने इसी लिये मानव चेतना को झकझोरने हेतु लिखा– 'सन्देश' नहीं मैं स्वर्गलोक से लाया, इस भू–तल को ही स्वर्ग बनाने आया। आऐं! हम सभी रामायण के पावन दिव्य चरित्र नायकों का अनुसरण करें केवल कथा–श्रवण मात्र से समाज की गुणवत्ता में कोई अंतर नहीं आने वाला।

– अशोक आर्य, ०९३१४२३५१०१, ०९००१३३९८३६

❑❑❑

श्री राम नवमी पर विशेष

मेरे राम

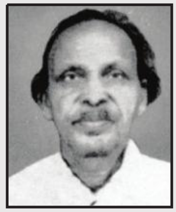

– आचार्य प्रेमभिक्षु (स्मृति शेष)

आदर्श ईश्वर भक्त राम

श्रीराम की सफलता का आधार उनकी अनन्य ईश्वरनिष्ठा थी। जीवन के किसी क्षण में भी न सुख के गर्वीले क्षणों में और न घोर कष्टों के तमावृत अवसरों पर उन्होंने अपनी अगाध ईश्वर निष्ठा को खोया नहीं। दैनिक सन्ध्योपासन,अग्निहोत्र एवं स्वाध्याय द्वारा अपने आत्मतेज एवं आत्मशक्ति को निखारना और स्वधर्म अर्थात् स्व-कर्तव्य के पालन में उस शक्ति का उपयोग करना,यही है श्री राम की ईश्वर-भक्ति । नित्यकर्मों का अनध्याय (नागा) वे प्रवास काल में भी नहीं करते। ऋषि विश्वामित्र के साथ पदयात्रा में प्रातः और सायं दोनों समय निष्ठापूर्वक नित्य-कर्म करना वे नहीं भूलते। वनवास काल में चलते-चलते जहाँ संध्या हो जाती है, वहीं रुक कर सन्ध्यादि कर्म में प्रवृत्त होते और प्रातः आगे प्रस्थान करने के पूर्व संध्यादि नित्यकर्म करते हुए हम उन्हें देख सकते हैं। तो ऐसे अनन्य ईश्वर भक्त श्री राम थे। पर ईश्वरभक्ति के नाम पर कर्तव्य-पराङ्.मुख होकर किसी गिरि-गुहा में बैठकर, मालाएँ घुमाते हुए या 'हरिनाम संकीर्तन' के नाम पर उछलकूद मचाते हुए हमने उन्हें वनवास काल में भी नहीं देखा,जबकि उन्हें वहाँ इसके लिए पर्याप्त अवसर हो सकता था। उस समय में भी हम उन्हें वनवासी प्रजा के कष्ट निवारण की योजनायें बनाते हुए अथवा अगस्त्य आदि ऋषियों के आश्रम में अपना ज्ञान-वर्द्धन करने एवं नवीनतम वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों का शिक्षण प्राप्त करने में रत् हुआ पाते हैं।

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार 'स्वधर्म' अर्थात् 'क्षात्र-धर्म' का बड़ी खूबी से पालन करना और इस प्रकार ईश्वराज्ञा का पालन करना ही राम के निकट सच्ची भक्ति थी। 'क्षात्रधर्म' के रहस्य और उसकी महिमा को वे पूरी गहराई से समझते थे। वे कहते हैं-

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त्तशब्दो भवेदिति। अरण्य काण्ड १०/३

क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करते हैं ताकि किसी आर्त्त की करुण वाणी न सुनी जा सके। राष्ट्र के तीन महाशत्रु अज्ञान,अन्याय और अभाव में से अन्याय-शमन का व्रत सच्चा क्षत्रिय धारण करता है। इसी क्षात्रधर्म से प्रेरित हो वे राक्षसों के वध के लिए प्रतिज्ञारत् होकर प्रवृत्त होते हैं। एक आदर्श प्रभुभक्त की तरह घोरतम कष्टों के बीच भी वे इस निष्ठा से विचलित नहीं होते। स्वधर्म पालन उनके निकट ईश्वर-भक्ति का पर्याय है। इस प्रकार मानो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम वैदिक ईश्वर भक्ति की मर्यादा और उसका आदर्श भी अपने जीवन द्वारा प्रस्तुत करते हैं।

आदर्श मातृ -पितृ भक्त राम

भगवान राम के जीवन के सभी अध्याय अत्यधिक प्रेरणाप्रद और आदर्श हैं, पर उनकी पितृभक्ति मानो सर्वोपरि है।
महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर सम्वाद के प्रकरण में यक्षराज वहाँ कई प्रश्नों में से दो प्रश्न इस प्रकार करते हैं-
यक्ष – पृथ्वी से भी भारी क्या है?
युधिष्ठिर – माता
यक्ष – आकाश से भी ऊँचा कौन है?
युधिष्ठिर – पिता।

सच में माता की सहिष्णुता एवं गरिमा और पिता की निज सन्तान के लिए उदारता एवं उच्चता को कौन माप सकता है? श्रीराम ने माता की इस गरिमा और पिता की इस उच्चता का अनुभव किया था और माता-पिता के महान् ऋण से अनृण हो सकने की भावना तथा अदम्य प्रेरणा से उन्होंने अपने आपको ही उनके चरणों में अर्पण कर दिया था।
'पितृयज्ञ' आर्यजनों के नित्य कर्म का, एक अविभाज्य अंग है। पितृयज्ञ के दो भाग हैं

१. श्राद्ध २.तर्पण।

'श्राद्ध' का अर्थ है प्रतिदिन श्रद्धा पूर्वक माता-पिता एवं गुरुजनों के चरणों में श्रद्धापूर्वक नमन तथा उनकी सेवा शुश्रूषा और 'तर्पण' का अर्थ है अपने कार्यकलाप और यशस्वी जीवन व्यवहार से उन्हें तृप्त करना। राम पितृयज्ञ के इन दोनों रूपों को प्रतिदिन निष्ठापूर्वक निभाते थे। विनय सम्पन्न हो, गुरुजनों के चरणों में नमस्ते निवेदन करने का महत्त्व मानव धर्मशास्त्र प्रणेता मनु महाराज ने निम्न प्रकार वर्णित किया है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्। मनु० २/१२१

अर्थात् अपने बड़ों को नित्य ही सश्रद्ध अभिवादन करने वाले एवं उनकी सद्‌शिक्षा के अनुसार आचरण करने वाले दीर्घायु, विद्या, यश और बल इन चार अनमोल पदार्थों को पाते हैं। श्रीराम ने गुरुचरणों में बैठकर जीवन-निर्माण के इन सूत्रों का अध्ययन किया था। सन्त तुलसी लिखते हैं-

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।मातु-पिता गुरु नावहिं माथा।
आयसु मागि करहिं पुर काजा।देखि चरित हरषइ मन राजा।। मानस बालकाण्ड/दोहा २०४/४

इतना ही नहीं वे प्रत्येक कार्य करने में माता-पिता की प्रसन्नता का पूर्ण विचार रखते थे। उनके सभी कार्य- कलाप पिता की प्रसन्नता को बढ़ाने वाले और माता के आनन्द की वृद्धि करने वाले होते थे। उनकी यह पितृ-भक्ति सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं वरन् जब उनकी परीक्षा का प्रसंग उपस्थित हुआ तो वह खरे कंचन की भाँति कसौटी पर उत्तीर्ण हुए।

कोप भवन

कैकेयी के भवन में यों बेहाल पड़े अपने पूज्य पिता की विह्वलता को राम देख नहीं सके, बड़े करुणापूर्ण स्वर में वे बोले- 'माँ, पिताजी ने मुझे किसलिए याद किया है, पिताजी को क्या कष्ट है, पिताजी इस तरह विकल क्यों हैं? माताजी, हमने तो पिताजी को कष्टित करने वाला कोई कार्य नहीं किया है?' और जब कैकेयी ने कहा कि राम! राजा तुम्हें कुछ कहना चाहते हैं पर तुम्हारे डर के कारण नहीं कहते'। इस कथन पर शांतिमूर्ति श्रीराम आवेश में आ जाते हैं। वे इस चुनौती को सह नहीं पाते और कहते हैं।

अहोधिङ्‌नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृश वचः।अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे।नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च।।
तद्‌ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम्।करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते। अयोध्या कांड १८/२८-३०

हे माता! मुझे धिक्कार है जो आप ऐसे संकोच और सन्देहयुक्त शब्द कहती हैं। मैं राजा (पिता) की आज्ञा से आग में भी कूदने को तैयार हूँ। हलाहल विष पीने और जीवन समाप्त कर देने वाले समुद्र में डूबने को तैयार हूँ। चाहे जो हो पिताजी मुझे जो आज्ञा करेंगे,उसे मैं जरूर पूरा करूँगा। माता! आप स्मरण रखें कि राम कभी दो वचन नहीं बोलता अर्थात् जो एक बार कह देता है उसे अवश्य पूरा करता है।'

इसी प्रसंग में वे आगे कहते हैं-

न ह्यतो धर्मचरणं किंचदस्ति महत्तरम्। यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।। अयोध्या कांड १९/२२

सन्त तुलसीदास ने इन्हीं भावों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है-

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी, जो पितु मातु बचन अनुरागी।
तनय मातु पितु तोषनि हारा, दुर्लभ जननि सकल संसारा।। मानस/ अयोध्या काण्ड/ दोहा ४०/४

अगाध पितृ-भक्ति-रस में पगे राम के ये वचन विश्व-इतिहास में पितृ-भक्ति का ऐसा दिव्य आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो अपने आप में अद्वितीय है। इन शब्दों में राम का अदम्य आत्मविश्वास झाँक रहा है।

राम की प्राणप्रिया सीता राम के साथ वन जाने का साग्रह अनुरोध कर रही है। राम के अगाध सीता-प्रेम का तकाजा है कि वे अपनी प्यारी पत्नी को साथ ले जाएँ। पर तभी पूज्य पिता दशरथ की शोकपूर्ण निगाहें और प्यारी-प्यारी ममतामयी माँ की

शोक-कातर तस्वीर राम की आँखों में झूल जाती है, वे अपनी प्यारी प्रिया को समझाते हुए कहते हैं-

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।। मानस /अयोध्या काण्ड/दोहा ६०/३

अर्थात् प्रिये! घर पर ही रहकर तुम सासु-श्वसुर की सेवारूप सबसे बड़े धर्म के पालन का लाभ प्राप्त करो। अपनी युवा पत्नी को १४ वर्ष के लिए पितृ-सेवा के लिए घर पर रहने का आग्रह राम की ज्वलन्त पितृ-भक्ति का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इसके पीछे कितनी अनुपम त्यागमयी उदात्तता है, इसका अनुमान ही संभव है। श्री लक्ष्मण जी को घर पर रहने के आग्रह के पीछे राम का यही प्रबल पितृ-प्रेम और अनुपम पितृभक्ति का आदर्श सामने आता है। लक्ष्मण को समझाते हुए वे कहते हैं-

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जायँ।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा ७०/
अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई, करहु मातु पितु पद सेवकाई।
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं, राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।।
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।
रहहु करहु सब कर परितोषू नतरु तात होइहि बड़ दोषू।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा ७०/१-३/

वन गमन के प्रकरण में माता कौशल्या से भी वे कहते हैं-

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम। प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।। अयोध्याकाण्ड/२१/३०

माता मैं आपके चरणों में शिर रखकर विनय करता हूँ, आप प्रसन्न हूजिये। मुझमें पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है। अतः मैं वन को जाना चाहता हूँ।'

इसी प्रकार सुमन्त्र को अयोध्या वापिस करते समय, भरत द्वारा पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनने के समय, ऋषियों-मुनियों के साथ वार्तालाप में श्रीराम की आदर्श पितृभक्ति के दर्शन सहजतया हो सकते हैं।

आदर्श मातृभक्ति

पितृभक्ति की भाँति ही राम की मातृ-भक्ति भी सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय है। ऊपर के सभी प्रसंगों में भी पितृ-भक्ति के साथ ही उनकी मातृभक्ति की छाप भी स्पष्ट ही है। लंका विजय के पश्चात् वनवास की अवधि समाप्ति का समय निकट ही जानकर राम विभीषण और सुग्रीव आदि के अत्याग्रह पर भी उधर रुकना नहीं चाहते। अपने शीघ्र अयोध्या लौटने का हेतु देते हुए वे प्रतीक्षा कर रही माताओं को स्मरण कर कहते हैं-'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि'।

वनवास के अनेकों प्रसंगों में उनका यह मातृप्रेम ऊपर उभर आता है। राम की मातृभक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सभी माताओं में समान भक्ति रखते हैं। मन्थरा की पापमयी मन्त्रणा से कैकेयी के मन में भी जब तक स्वार्थ का सर्प फण फैलाकर जाग नहीं उठा है तब तक स्वयं कैकेयी भी राम की इस निष्ठा के प्रति कितनी विश्वस्त है, यह उसी के शब्दों में देखिए-

यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोपि राघवः। कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम्।। अयोध्याकाण्ड ८/१८

'मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र हैं, उससे भी अधिक राम हैं। कौशल्या से भी बढ़कर राम मेरी सेवा करते हैं।

श्रीराम की मातृभक्ति बड़ी ही आदर्श थी। माता कैकेयी के कठोर व्यवहार के समय भी वे बड़ा सम्मान प्रकट करते हुए कहते हैं-

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा ४१

कुपित हुए भाई लक्ष्मण को वे कहते हैं- 'लक्ष्मण! माता कैकेयी के मन में सन्देह के कारण उत्पन्न हुए दुःख की मैं एक मुहूर्त्त के लिए भी उपेक्षा नहीं कर सकता।

न बुद्धिपूर्वं नाबद्धं स्मरामीह कदाचन। मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्।। अयोध्याकाण्ड २२/८

'हे लक्ष्मण! मैंने कभी जानबूझकर या अनजाने माताओं या पिताजी का कभी थोड़ा भी अप्रिय कार्य किया हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। अपनी मातृ-पितृ-भक्ति के प्रति कैसी गहन निष्ठा है, राम में। भरत को राम कहते हैं- 'माता कैकेयी ने जो किया

उसको कभी मन में न लाना। उसके साथ सदा वैसा ही बर्ताव करना,जैसा पूजनीय माताओं के साथ करना चाहिए।' इससे पता लगता है कि श्री राम को अपनी अन्य माताओं में कैसी भक्ति रही होगी।

आदर्श भ्रातृ प्रेम

श्रीराम का भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय है। बचपन से ही उन्हें अपने सब भाइयों से बड़ा प्रेम था। राम सदा ही अपने सब भाइयों की रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। रामचन्द्रजी को जो भी कोई उत्तम वस्तु या भोजनादि मिलता उसे वे पहले अपने भाइयों को देकर पीछे स्वयं उपयोग में लाते थे।

राम के राज्याभिषेक का प्रसंग है। वे माता कौशल्या के महल में आये हैं। वहीं माता सुमित्रा और लक्ष्मण उपस्थित हैं। लक्ष्मण को देखते ही राम का भ्रातृप्रेम उमड़ने लगता है, वे कहते हैं-

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगास्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।जीवितं च हि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये।। मानस अयोध्याकाण्ड ४/४३-४४

'लक्ष्मण तुम मेरे साथ पृथ्वी का शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो, यह राज्यलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। सुमित्रानन्दन ! तुम मनोवांछित भोग और राज्यफल का उपभोग करो। मैं जीवन और राज्य तेरे लिए ही चाहता हूँ।'

श्रीराम को अकेले राज्य स्वीकार करने में बड़ा अनौचित्य अनुभव हो रहा है। वे स्वयं में खोये हुए विचार कर रहे हैं-

जनमे एक संग सब भाई।भोजन सयन केलि लरिकाई।
करनबेध उपबीत बिआहा।संग संग सब भये उछाहा।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू।अनुज बिहाय बड़ेहि अभिषेकू।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा ९/३-४

जीवन नाटक का पट परिवर्तन होता है। राम को वन गमन का आदेश मिलता है और भरत को अयोध्या का राज्य। राम प्रसन्न मुद्रा में कहते हैं-

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू, बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा ४१/१

राम के वन गमन का प्रसंग है। सीता अपने प्राणाधिक प्रिय पति के साथ चलने का आग्रह कर रही है। राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं-

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः। त्वया भरत शत्रुघ्नो प्राणैः प्रियतरौ मम।। अयोध्याकाण्ड / २६/३३

'सीते! मेरे भाई भरत-शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई या पुत्र के समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिए।'
वन गमन के समय लक्ष्मण को समझाने के प्रसंग में राम कहते हैं-

स्निग्धो धर्मरतो वीर सततं सत्पथे स्थितः। प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राता चापि सखा च मे।। अयोध्याकाण्ड ३१/१०

'लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म-परायण, धीर और सदा सन्मार्ग में स्थित रहने वाले भाई हो। मेरे प्राणों के समान प्रिय और मेरे आज्ञानुवर्ती अतरंग सखा हो।'

भरत जी सेना सहित चित्रकूट आ रहे हैं, यह देखकर श्री राम-प्रेम के कारण लक्ष्मण क्षुब्ध हो, भरत के प्रति अवाच्य शब्द कह बैठते हैं। राम, इससे दुःखी हो जाते हैं, वे कहते हैं-

'लक्ष्मण! मैं सचाई से अपने आयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी सब कुछ, तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ। लक्ष्मण ! मैं राज्य को भाइयों की भोग्य सामग्री और उनके सुख के लिए ही चाहता हूँ। तथा मेरे विनयी भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वन में आने की बात कान में पड़ते ही भरत का हृदय स्नेह से भर गया है, शोक से उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं, अतः वह मुझे देखने के लिए आ रहा है उसके आने का कोई दूसरा कारण नहीं है।' चित्रकूट पहुँचने पर दूर से ही भरत को प्रणाम करता हुआ देखकर श्रीराम अधीर हो उठते हैं। सन्त तुलसी के शब्दों में:-

उठे राम सुनि पेम अधीरा।कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा।। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा २३९/४

बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान।
भरत-राम की मिलनि लखि बिसेर सबहि अपान। मानस अयोध्याकाण्ड/दोहा २४०

लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में,राम की शोक विह्लता में भ्रातृ-प्रेम की पराकाष्ठा है। राम कहते हैं-

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्ध कार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः।।
यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः।
अहमप्यनुस्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।।
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामद्य गतोऽवस्थां राक्षसैः कूटयोधिभिः।। अयोध्याकाण्ड ४६/ १७-१८

'अब मुझे युद्ध से या जीवन से क्या प्रयोजन है? जब प्यारा भाई लक्ष्मण निहित होकर रणभूमि में सो चुका है, युद्ध का अब कोई काम नहीं है। भाई! जिस प्रकार महातेजस्वी तुम मेरे साथ वन में आये थे, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ परलोक में जाऊँगा । यह सदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुयायी रहा है, हाय! कपट-युद्ध करने वाले राक्षसों ने आज इस अवस्था में पहुँचा दिया।'

इस अवसर पर राम-प्रलाप का जो वर्णन तुलसीदास ने किया है वह जहाँ हिन्दी साहित्य का अलभ्य रत्न है, भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का भी अप्रतिम प्रतीक है। उसका कुछ अंश हम यहाँ देते हैं।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ।बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेउ पितु माता।सहेउ विपिन हिम आतप वाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई।उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ।।
जो जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू।पिता बचन मनतेउं नहिं ओहू।
सुत बित नारि भवन परिवारा।होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।
अस बिचारि जिय जागहु ताता।मिलहि न जगत सहोदर भ्राता।।
जथा पंख बिनु खगअति दीना।मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही।जो जड़ दैव जिआवै मोही।। मानस लङ्काकाण्ड/दोहा६० ख/२-५

भ्रातृ-प्रेम से सराबोर इस करुणा पर करुणा भी रो देगी।

श्री राम लंका-विजय कर अयोध्या लौटने को तैयार हैं। विभीषण बड़े आग्रह और विनय भरे शब्दों में कुछ समय लंका में रुकने की प्रार्थना करते हैं। श्री राम उत्तर में कहते हैं-

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः।
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृत मया।। युद्धकाण्ड १२१/१८-१९

राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ-ऐसा कदापि संभव नहीं, परन्तु मेरा मन उस भाई भरत से मिलने के लिए छटपटा रहा है जिसने चित्रकूट आकर मुझे लौटा ले जाने के लिए सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने उसके वचनों को स्वीकार नहीं किया था। उस प्राण प्यारे भाई भरत से मिलने में मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ?

भाइयों को उपदेश करते हुए भी उनका भ्रातृ-प्रेम दर्शनीय है। तुलसी रामायण में एक प्रसंग में वे कहते हैं-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
नर शरीर धरि जे पर पीरा करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

श्रीराम के भ्रातृप्रेम का यह केवल दिग्दर्शन मात्र है। भाइयों के लिए ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरत के राज्याभिषेक के प्रस्ताव से परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिस□□□□ राज्याभिषेक रुका, उस भाई की माता कैकेयी पर पहले

यज्ञ और पर्यावरण

'सत्यार्थदूत'
सरोज आर्या, जयपुर

पर्यावरण- पर्यावरण ईश्वर प्रदत्त अमूल्य निधि है। जो सम्पूर्ण मानव समाज का महत्त्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग है। पंचभौतिक तत्त्वों से मिलकर पर्यावरण का निर्माण हुआ है। मानव अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये इन्हीं पंचभौतिक तत्त्वों, वृक्ष-वनस्पतियों एवं पशु जगत् पर निर्भर है।

वर्तमान युग औद्योगीकरण और मशीनीकरण का है, औद्योगिक उन्नति के कारण मानव जीवन सरल, सुगम एवं सुविधाजनक हुआ है। लेकिन इस विकास के साथ-साथ बहुत सी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं में से एक समस्या पर्यावरण प्रदूषण की है।

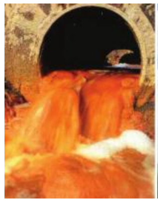

प्रदूषण क्या है ? ईश्वर प्रदत्त तत्त्वों के किसी भी तत्त्व में होनेवाला अवांछनीय परिवर्तन, जिससे जीव जगत् पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, प्रदूषण कहलाता है। प्रदूषण दो प्रकार का हो सकता है-स्थानीय प्रदूषण, जैसे-ईंधन के जलने से उत्पन्न अत्यधिक सघन धुँआ और वैश्विक प्रदूषण। वर्तमान में हुए शोधों से ज्ञात होता है कि स्थानीय प्रदूषण कभी-कभी विश्व के लिए भी खतरा बन सकता है, जैसे आणविक विस्फोटों से उत्पन्न होनेवाली रेडियोधर्मिता।

प्रदूषण उत्पन्न करनेवाले स्रोत- रासायनिक उद्योग, आणविक अपशिष्ट स्थल, तेल रिफायनरीज़, कूड़ाघर, प्लास्टिक उद्योग, पशुगृह, वाहन उद्योग आदि प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। प्राकृतिक आपदाओं के पश्चात् भी प्रदूषण उत्पन्न होता है, जैसे अतिवृष्टि, समुद्री तूफ़ान।

विभिन्न प्रकार के प्रदूषण- कल-कारखानों, मोटर-वाहनों, रेलगाड़ियों, तकनीकी उपकरणों और कोयले की खानों से निकलनेवाले धुँए से वायु प्रदूषण, जलप्रदूषण एवं रासायनिक प्रदूषण होते हैं। एक्स किरणें, परमाणु/अणु/हाइड्रोजन बमों के विस्फोट से रेडियोधर्मी प्रदूषण होता है। जनसंख्या वृद्धि और पृथ्वी के संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन भी प्रदूषण का कारण है। वाहनों, तेज संगीत, सायरन, तोप, शोर आदि की ध्वनि जिसका परिमाण ८० से १८० डेसीबल हो ध्वनि प्रदूषण में गिना जाता है। आधुनिकता एवं विकास ने वायु और जल प्रदूषण को जन्म दिया है, वायु प्रदूषण के लिए कुछ प्रकृतिजन्य कारण हैं जो मानव के वश में नहीं हैं। जैसे मरुस्थली तूफ़ान, दावानल, समुद्री तूफ़ान।

प्रदूषण का प्रभाव- प्राकृतिक रूप में पर्यावरण विशुद्ध एवं प्राणिमात्र के लिए पोषक है। जिस स्थान का वातावरण शुद्ध और प्रकृति के अनुकूल होता है, वहाँ के निवासी स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं। पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों और मानवों का जीवन पर्यावरण की शुद्धता और स्थिरता पर ही निर्भर करता है। प्रदूषण विभिन्न प्रकार की बीमारियों को जन्म देता है, जैसे-कैंसर, एलर्जी, अस्थमा, प्रतिरोधक बीमारियाँ आदि।

भारत में हजारों कल-कारखानों, मोटर-वाहनों, रेलगाड़ियों, मशीनों, औद्योगिक यंत्रों और तकनीकी उपकरणों से उत्पन्न होने वाली दूषित वायु से वातावरण में कार्बनडाईऑक्साइड गैस का अनुपात बढ़ा है, परिणामस्वरूप भूमण्डल का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। जिससे हिमखण्डों के पिघलने से समुद्री जलस्तर बढ़ने से तटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो जायेंगे। अतः कल-कारखानों, वाहनों द्वारा निकलने वाले धुँए से पर्यावरण कम से कम प्रदूषित हो, ऐसे उपाय किए जाने चाहिए।

प्राकृतिक पदार्थों का संरक्षण– मानव उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर ने भोग्य पदार्थ पृथ्वी, जल, वायु, वृक्ष-वनस्पतियाँ, सूर्य, चन्द्रादि नक्षत्र और पशु-पक्षियों को बनाया। यजु० (३१/६) के अनुसार 'संभृतं पृषदाज्यं पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्याग्राम्याश्च ये' अर्थात् परमेश्वर ने पहले दध्यादि भोग्य पदार्थों तथा वायु में गमन करनेवाले पक्षियों, व्याघ्रादि बनैले पशुओं तथा नगरों एवं ग्रामों में रहनेवाले गाय, घोड़े आदि पशुओं को उत्पन्न किया। प्राणियों का अस्तित्व वृक्षों (जंगलों) से है, पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पतियाँ ईश्वरीय व्यवस्था में रहते हुए एक-दूसरे की सहायता कर जीते हैं। यही नहीं ये सभी सृष्टि चक्र को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अमूल्य पञ्चभौतिक तत्त्वों, वृक्ष-वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं पर निर्भर हैं। वह अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु इन प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन करने लगा है और पर्यावरण को असंतुलित बनाये हुए है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। प्राकृतिक पदार्थों के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि इनका कम से कम दोहन किया जाय।

प्राणि जगत् का मानवों पर उपकार– पशु-पक्षी का मानवजाति पर बड़ा उपकार है। कुछ पशु-पक्षी मृत जानवरों का माँस खाकर पर्यावरण को स्वच्छ बनाते हैं। मछलियाँ नदी, तालाब और समुद्र के पानी को स्वच्छ रखती हैं। कीट-पतंगे वायु में स्थित रोगाणुओं और कीटाणुओं को खाकर वायु को स्वच्छ रखते हैं। यह सब ईश्वरीय व्यवस्था है। मानव अपने स्वार्थ, शौक, स्वाद, भोग-विलास एवं नये-नये प्रयोगों और नई खोजों के बहाने प्रकृति नियम के विपरीत पशुओं की हत्या करता है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति से प्राणियों का अभाव होने से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाएगा। वेद में अनेकत्र पशुरक्षा का निर्देश किया है– 'पशुन् पाहि।' (यजु.१/१) पशुओं की रक्षा करो। 'अनागोहत्या वै भीमा' (अथर्व०१०/१/२९) निरपराध गौ की हत्या करना भंयकर पाप है। ऋग्वेद में गोवध को मनुष्यवध जैसा अपराध घोषित करते हुए अपराधी को प्राणदण्ड का निर्देश किया है। ऐसे उपकारक पशुओं के संरक्षण हेतु निर्दोष पशु की हत्या करनेवालों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

वनस्पति जगत् का मानवों पर उपकार– वृक्ष-वनस्पतियों का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जंगल न रहें तो न वर्षा हो न ही पर्याप्त शुद्ध वायु ही प्राप्त हो सके। मनुष्य श्वास द्वारा ऑक्सीजन गैस लेता है और कार्बनडाईऑक्साइड गैस बाहर निकालता है। पेड़-पौधे इस कार्बनडाईऑक्साईड गैस को श्वास द्वारा लेकर ऑक्सीजन गैस बाहर निकालते हैं जिसे प्राणीजगत् श्वास द्वारा ग्रहण करता है। इस प्रकार इन दोनों गैसों का वातावरण में संतुलन बना रहता है। इसके अतिरिक्त पौधे सूर्य के प्रकाश में इस कार्बनडाईऑक्साईड गैस, पौधों की पत्तियों में स्थित हरित लवण (क्लोरोफिल) और जल की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स बनाते हैं, जो भोजन के रूप में पत्तियों, जड़ों और तनों में एकत्रित रहता है, इन्हें पशु-पक्षी और मनुष्य भोजन के काम में लेते हैं। प्राणीजगत् द्वारा मल-मूत्र का त्याग किया जाता है, उसमें स्थित नाइट्रोजन से जमीन उपजाऊ बनती है। इसके अतिरिक्त वृक्षों की लकड़ियों के उपयोग से हम सब भलीभाँति परिचित हैं। वृक्षों की कटाई और पशुओं की हत्या से पर्यावरण में कार्बन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन का संतुलन बिगड़कर रुक भी सकता है। अब आप स्वयं विचार करें कि क्या ऐसे बहुपयोगी एवं पर्यावरण को स्वच्छ रखनेवाले वृक्षों को काटना उचित है? यदि नहीं तो पर्यावरण के संरक्षण एवं शुद्धि हेतु वृक्षों की कटाई को जघन्य अपराध माना जाय वहीं वृक्षारोपण जैसे पवित्र कार्य करनेवालों को प्रोत्साहित किया जाय।

ध्वनि प्रदूषण

यज्ञ द्वारा प्रदूषण की रोकथाम– व्यापकरूप से पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष के दोषों को दूर करते रहने का सर्वोत्तम साधन सूर्य है। अथर्ववेद (२/३२/१) में कहा है– 'उदय और अस्त होता हुआ सूर्य अपनी प्रखर किरणों से शरीर के भीतर-बाहर और पृथ्वी पर विद्यमान कीटाणुओं को नष्ट कर देता है।' द्युस्थानीय सूर्य का धरती पर प्रतिनिधित्व अग्नि करती है। अग्नि में पड़ते ही किसी पदार्थ की अशुद्धि सर्वथा समाप्त हो जाती है।

विकास समय की माँग है, लेकिन वातावरण को प्रदूषणरहित रखना भी आवश्यक है। मलमूत्र के विसर्जन, पदार्थों के गलने-सड़ने, श्वास-प्रश्वास की क्रिया, धूम्रपान, कल-कारखानों से निकलने वाला धुआँ और यातायात आदि के कारण उत्पन्न प्रदूषण के लिये मानव स्वयं ही उत्तरदायी है। तब इसका निराकरण करना भी उसका ही कर्तव्य है। आज का विज्ञान पर्यावरण की शुद्धि एवं संरक्षण के लिये एकमात्र उपाय कीटनाशक एवं अन्य रासायनिक पदार्थों के उपयोग की बात करता है। लेकिन

क्या इनके छिड़काव मात्र से पर्यावरण पूर्णरूप से शुद्ध हो जाता है? कदापि नहीं! पर्यावरण को शुद्ध बनाने का तरीका यज्ञ से हो सकता है। यज्ञ प्रकृति के निकट रहने का साधन है अर्थात् हम समस्त भूसम्पदा की रक्षा करते हुए स्वयं भी सुखी रह सकते हैं और दूसरों को भी सुखी कर सकते हैं। यज्ञ के वास्तविक स्वरूप का महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में दिग्दर्शन कराया है। वे लिखते हैं- 'देखो, जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझलो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।'

रोगनाशक औषधियों से यज्ञ द्वारा रोगनिवारण का उल्लेख चरकसंहिता, बृहन्निघण्टु आदि आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थों में मिलता है। यह औषधीय प्रभाव वातावरण को प्रदूषण से मुक्त करके स्वस्थ रहने में सहायक होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी परीक्षण करके यज्ञ द्वारा वायु की शुद्धि होकर रोगनिवारण की इस वैदिक मान्यता को स्वीकार किया है।

विज्ञान के अनुसार रासायनिक क्रिया छोटे-छोटे पदार्थों में अधिक होती है क्योंकि रासायनिक क्रिया में पदार्थों के अणु/परमाणु भाग लेते हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। अतः पदार्थ जितना सूक्ष्म होगा वह क्रिया में उतनी ही जल्दी भाग लेगा एवं क्रिया भी तेज होगी। रासायनिक क्रिया ठोस पदार्थ की अपेक्षा द्रव में और द्रव पदार्थ की अपेक्षा गैसीय पदार्थ में सर्वाधिक होती है, क्योंकि गैसरूप में पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म होता है और उसका पृष्ठभाग भी अधिक होता है। उदाहरण के लिए-जब हाइड्रोक्लोरिक एसिड (तेजाब) में संगमरमर के टुकड़ों के स्थान पर उसका चूरा डाला जाता है तो रासायनिक क्रिया तेजी से होती है और गैस अधिक वेग से निकलती है।

जब कोई पदार्थ अग्नि में डाला जाता है तो वह अत्यन्त सूक्ष्म होकर गैसरूप में फैलता है। इसके अतिरिक्त जब कण सूक्ष्म हो जाते हैं तो उसकी पृष्ठवक्रता भी कम हो जाती है। इसप्रकार इन तीनों बातों के लिये यज्ञ अत्यन्त उपयोगी है। यही कारण है कि जिस स्थान पर यज्ञ किया जाता है उस स्थान पर विद्यमान अग्नि, वायु और सूर्य की किरणों की शक्ति बढ़ जाती है।

प्रायः लोगों का विचार है कि यज्ञ में घृतादि पदार्थ व्यर्थ ही चले जाते हैं, लेकिन यह सही नहीं है। विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता उसका रूपान्तरण होता है या अपनी कारणावस्था में लीन हो जाता है। जैसे बर्फ का जल में बदलना और जल का वाष्प में बदलकर उड़ जाना, जल का नष्ट हो जाना नहीं अपितु अवस्था परिवर्तन है। यही बात यज्ञ में आहूत भस्म हुए पदार्थों की है। वे सूक्ष्मरूप में सदा आकाश में विद्यमान रहते हैं।

यज्ञ में पौष्टिक, सुगन्धित और रोगनाशक औषधियों की सामग्री/साकल्य के रूप में दी गई आहुति से पर्यावरण की शुद्धि होती है। देखें कैसे? यज्ञ में आहूत की गई सामग्री सूक्ष्म होकर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में जाकर अपना प्रभाव दिखलाती है। पृथिवी पर ये घृतयुक्त औषधियाँ मनुष्य, प्राणी और वनस्पतियों पर अपना प्रभाव ड़ालती हैं। (यजु०१/१) में यज्ञ को जहाँ सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा है वहीं (यजु०१/२) में यज्ञ को प्राणीजगत् और पर्यावरण को सुखकारक बनानेवाला साधन कहा गया है। मरणासन्न व्यक्ति को श्वास द्वारा ऑक्सीजन देकर जीवनदान दिया जाता है। यही सिद्धान्त यज्ञ में दी गई आहुतियों पर लागू होता है। यज्ञ की यह धूम मनुष्य/प्राणियों की श्वास द्वारा फेफड़ों के रास्ते होती हुई उनके रक्त में मिलकर हृदय तथा अन्य भीतरी अंगों को सक्रिय करती है। उदाहरण के रूप में मिर्च खाने और उसे आग में डालकर सूँघने से यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। आजकल सर्दी, जुकाम, खाँसी और दमा के लिये 'इनहेलर' (नस्य) का प्रयोग सर्वविदित है। यज्ञ से उठनेवाली औषधियुक्त और रोगनाशक वायु (धूम) एक प्रकार से इनहेलर का ही कार्य करती है। मानव शरीर को पुष्ट करने का इससे श्रेष्ठ साधन और क्या हो सकता है?

यज्ञ में डाले गए घृत, औषधियुक्त रोगनाशक आदि पदार्थों के कण हवा के साथ वाष्पकणों को शीतल कर वर्षा करवाने में सहायक होते हैं। तथा अपने प्रभाव को इन जलकणों पर छोड़ते हैं जो पर्यावरण की शुद्धि में सहायक है। होम की सहायता से होनेवाली वर्षा का जल शुद्ध होता है और इस शुद्ध जलवायु से उत्पन्न औषधि, अन्न और वनस्पतियाँ आदि भी शुद्ध अथवा निर्दोष होती हैं। इसलिये वेद में यज्ञ की सहायता से कृषि करने का आदेश दिया है। 'कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पताम्।' (यजु० १८/९)

❑❑❑

वैदिक संस्कृति एक सरल परिचय – अशोक आर्य

एक ऐसी पुस्तक जो वैदिक संस्कृति के विभिन्न सोपानों को बड़े सरल शब्दों में व्याख्यायित करती है। भारत की संस्कृति ऐसी महान् है जिसके कारण भारत विश्वगुरु की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका। आज भी विश्व भारत से बहुत कुछ सीखना चाहता है। ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द पर्यन्त साक्षात्कृतधर्मा ऋषि तथा श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे पुरुषोत्तम इसी संस्कृति की देन हैं। हमारी संस्कृति वेद संस्कृति है। स्वयं परमपिता परमात्मा की आज्ञा हमारी जीवन पद्धति है। उक्त पुस्तक में इस सब को अत्यन्त सरलरूप से प्रस्तुत कर वैदिक दर्शन व संस्कृति को समझने का प्रयास कर रहे अध्येताओं के लिए यह सफलतम प्रारंभिक पुस्तक है। किसी को भी उपहार देने के लिए इस पुस्तिका की उपयोगिता निश्चित है। मूल्य मात्र २५/-

महर्षि शुक्राचार्य के मत से 'श्रीराम के समान नीतिमान् राजा पृथ्वी पर न कोई हुआ है और न कभी होना ही संभव है- 'न रामसदृशो राजा पृथिव्या नीतिमानभूत् ।' (शुक्रनीति ४।६।१२१५)। शुक्राचार्य जी के उपर्युक्त कथन की परम्परा में हम श्रीहनुमानजी के विषय में यह कह सकते हैं कि 'उनके समान कुशल मन्त्रणा प्रदान करने वाला सचिवोत्तम भी अन्यत्र नहीं हुआ है।' स्वयं श्रीराम ने अपने अनुज लक्ष्मण से इस बात का उल्लेख करते हुए कहा था-

लक्ष्मण! ये महामनस्वी वानरराज सुग्रीव के सचिवोत्तम हनुमान हैं। ये उन्हीं के हित की इच्छा से मेरे पास आये हैं। भाई! जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली। सम्भाषण में इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य किसी अंग से भी कोई दोष प्रकट हुआ हो,ऐसा कहीं लक्षित नहीं हुआ। इन्होंने बड़ी स्पष्टता से अपना अभिप्राय व्यक्त किया है।' (वा.रा.४।३।२६-३१)

हनुमान जयन्ती पर विशेष

राजनीतिज्ञ श्रीहनुमान

डॉ. भवानी शंकर पंचारिया

श्रीराम हनुमानजी के प्रथम मिलन में ही उनके महान् गुणों पर मुग्ध हो जाते हैं और उनकी योग्यता तथा कुशलता का मूल्यांकन करते हुए पुनः श्रीसुमित्रानन्दन से राजनीति का रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं- 'वध करने के लिए तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इस अद्भुत वाणी से बदल सकता है। जिस राजा के पास इनके समान मन्त्र-कुशल दूत न हो, उसके कार्यों की सिद्धि कैसे हो सकती है? निःसंदेह जिस राजा के पास इनके जैसे कार्यसाधक उत्तम दूत हों, उसके सभी मनोरथ दूतों की बातचीत से सिद्ध हो जाते हैं।' (वा.रा.४।३।३३-३५)

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि श्रीहनुमान में जहाँ एक श्रेष्ठ सचिव के समस्त गुणों का समावेश था, वहीं वे उत्तम राजदूत भी थे। श्रीराम-सुग्रीव मैत्री की स्थापना में उनकी भूमिका एक सफल राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकट हुई है। यदि सुग्रीव को विपन्नावस्था में हनुमान-जैसे मन्त्र कुशल, दूरदर्शी, नीतिज्ञ, मेधावी, शूरवीर और राजनीतिज्ञ मन्त्री का सान्निध्य प्राप्त नहीं होता तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कभी स्वप्न में भी बलशाली वाली के रहते सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य, अपहृत पत्नी और राज्य-वैभव प्राप्त होता। यहाँ वे एक श्रेष्ठ राजदूत के रूप में श्रीराम-सुग्रीव में स्वर्ण-संधि स्थापित करवाकर उभयपक्ष के हिताहित का बराबर ध्यान रखते हुए उत्तम मध्यस्थ की भूमिका का समुचित निर्वहन करते हैं। यह पवनपुत्र हनुमान की विशेषता है कि सुग्रीव के प्रति श्रीराम के हृदय में अच्छे मित्र के संवरण का आकर्षण उत्पन्न हो सका। उन्हीं के सत्प्रयास का परिणाम था कि श्रीराम, सम्पन्न वानरराज वाली की उपेक्षा करके दर-दर भटकते, प्राण बचाते, ऋष्यमूक में छिपे सुग्रीव को अपनाते हैं। कहीं सुग्रीव के चंचल वानर-स्वभाव के कारण यह मैत्री बीच में ही टूट न जाय, इस विचार से वे दोनों के मध्य अग्नि की साक्षी दिलाकर स्थायी मित्रता स्थापित कराते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने विजय का मूल कारण मंत्रियों की उत्तम मंत्रणा को ही बताया है । स्वयं रावण ने भी अपने मंत्रियों के समक्ष इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है- 'मंत्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः।(वा.रा.६।६।४) -बुद्धिमानों का भी यही कथन है कि विजय का मूल कारण मंत्रियों द्वारा की गई उत्तम मंत्रणा ही है।'

बलशाली वाली पर अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली सुग्रीव की विजय उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि है। आदर्श राज्य के प्रणेता श्रीराम का भी मत है कि राजा की विजय का मूल मंत्र-शक्ति ही है।

'मंत्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।' (वा.रा.२।१००।१६)

अर्थात् 'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राजाओं की विजय का मूल कारण है।'

कतिपय विद्वानों का यह कथन हमें भ्रान्त प्रतीत होता है कि मंत्री परिषद् का राज्य-व्यवस्था में प्रचलन 'ब्रिटिश केबिनेट' द्वारा

प्रारम्भ हुआ है अथवा ब्रिटिश केबिनेट ही समस्त मंत्री परिषद् की जननी है। रामायण के अनुशीलन पर ज्ञात होता है कि मंत्री परिषद् मूल रूप से भारतीय राजदर्शन का प्रधान अंग रही है। श्रीराम का आदर्श मंत्रिमंडल विभिन्न योग्यता-सम्पन्न मंत्रियों से युक्त था। श्री हनुमान इसमें सुरक्षा और विदेश-विभाग के विशेषज्ञ होने के नाते विदेश मंत्री तथा सुरक्षा सलाहकारों में प्रधान थे। श्रीराम की विजय और राजनीतिज्ञ रावण की पराजय का मूल कारण उभय पक्ष का मंत्रिमण्डल ही था। श्री रामचन्द्र जी ने चित्रकूट में अनुज कैकेयीनन्दन भरत को राजनीति का उपदेश देते हुए इस रहस्य का उद्घाटन किया था-

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः। अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता।।
एकोप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः। राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्।। (वा.रा.२।१००।२३-२४)

‘यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खों को अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसर पर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती, किन्तु यदि एक मंत्री भी मेधावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्ति की प्राप्ति करा सकता है।’

वस्तुतः ‘मंत्र-शक्ति’ ही राजदर्शन का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग रहा है, जिसकी उपेक्षा से राज्य को जितनी क्षति होती है, उतनी कदाचित् किसी अन्य बात से नहीं। यदि उपर्युक्त कसौटी को दृष्टिगत रखते हुए श्रीराम अथवा सुग्रीव के महान् विपत्ति से छुटकारा पाने और ऐसे दुर्धर्ष राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान्, शिव को रुलाने वाले रावण के पतन का अनुसंधान करें तो हमें ऐसा भासित होगा कि हनुमान जी की अद्वितीय, अद्भुत विलक्षण और विचक्षण मन्त्रणा का ही शुभ परिणाम है। रामायण के आदिकर्ता महर्षि वाल्मीकि ने हनुमान जी की विवेक-शक्ति, वाक्-पटुता ,पराक्रम, निर्णयशक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व, दूरदर्शिता एवं बाहरी चेष्टाओं से ही मन के भावों को ताड़ लेने की अद्भुत क्षमता का विशेष उल्लेख किया है,जिसके बल पर प्रथम मिलन में ही श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर उन्होंने इस बात का अनुमान लगा लिया कि ‘जिसके सहायक ये नरश्रेष्ठ होंगे, उसके कष्टों का पूर्ण निवारण हो सकता है।’ सुग्रीव ने भी ऋष्यमूक पर से श्री राम-लक्ष्मण को देखा, किन्तु वे उन्हें शत्रु-शिविर से भेजा(वाली मित्र) अरि-मित्र मानते हैं और मारे भय के थर-थर काँपने लगते हैं, जबकि वास्तव में ऋष्यमूक पर उन्हें वाली का कोई भय नहीं था। श्री राम-लक्ष्मण के सम्बन्ध में सुग्रीव कहते हैं- ‘मेरे मन में संदेह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष वाली के ही भेजे हुए हैं, क्योंकि राजाओं के बहुत से मित्र होते हैं, अतः उन पर सहसा विश्वास करना उचित नहीं। प्राणी-मात्र को छद्मवेष में विचरने वाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं, किन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषों पर ही प्रहार कर बैठते हैं। वाली इन कार्यों में बड़ा कुशल है। अतः कपि श्रेष्ठ ! तुम एक साधारण पुरुष की भाँति वहाँ जाओ और उनकी चेष्टाओं, रूप, बातचीत तथा तौर-तरीकों से उन दोनों का यथार्थ परिचय प्राप्त करो।’ (वा.रा.४।२।२१-२५)

> यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा, द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे, वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, क्रोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिये - महर्षि दयानन्द सरस्वती (सत्यार्थ-प्रकाश-षष्ठ समुल्लास, पृष्ठ सं. १४४)

हनुमान सुग्रीव के स्वामी भक्त सचिव थे। वे उनकी विपन्नावस्था से क्षुब्ध थे। वे उन्हें ढाढस और दिलासा दिलाते हुए कहने लगे- ‘सौम्य! आपको दुष्टात्मा वाली का यहाँ कोई भय नहीं। यदि वह यहाँ आयेगा तो जानते हैं,उसके सिर के सहस्रों टुकड़े हो जायेंगे । बुद्धि और विज्ञान के बल से आप दूसरों की चेष्टाओं और मनोभावों को समझ लेने के पश्चात् ही अपना आवश्यक कार्य करें, क्योंकि जो राजा बुद्धि-बल का आश्रय नहीं लेता, वह सम्पूर्ण प्रजा पर शासन नहीं कर सकता।’ सुग्रीव की ओर से हनुमान जी ने स्वतः ही मैत्री-प्रस्ताव रखकर अपनी दूरदर्शिता और कार्यकुशलता का परिचय दिया। श्रीराम और लक्ष्मण उनकी सम्भाषण-कला के प्रभाव से ही सुग्रीव के प्रति आकृष्ट हो सके थे। इतना ही नहीं, हनुमान जी ने सुग्रीव की दयनीय दशा का कुछ ऐसा विचित्र चित्रण किया कि श्रीराम ने मैत्री स्थापित करते ही उसके कष्ट के निवारणार्थ वाली का वध किया और किष्किन्धा के राज्य-सिंहासन पर सुग्रीव को प्रतिष्ठित कर दिया।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि श्री हनुमान जैसे सचिवोत्तम के महान् प्रयासों से ही सुग्रीव ने अपना खोया हुआ राज्य, पत्नी रूमा और प्रतिष्ठा पुनः अर्जित की थी।

रामायण के अनुशीलन से इस बात का संकेत मिलता है कि सुग्रीव में दृढ़ता, वचन-निर्वाहता और राजधर्म के अनुसार मित्र-राष्ट्र को दिये गये वचनों को पूर्ण करने की तत्परता नहीं थी। ज्यों ही उनके कष्ट दूर हुए, वे किष्किन्धा के राजमहलों में पहुँचते ही श्रीराम को दिये गये वचनों को भुला बैठे। कंचन-कामिनी एवं राज-सुख ने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ सा कर दिया था। ऐसी स्थिति में हनुमान जी ने एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ के चातुर्य का परिचय दिया है। उन्होंने सुग्रीव को मंत्री शिरोमणि या सचिवोत्तम के दायित्वों का हवाला देते हुए कहा -

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवो हितम्।इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः।। (वा.रा.४।३२।१८)

'राज्य की भलाई के काम पर नियुक्त हुए मंत्रियों का यह कर्तव्य है कि राजा को उसके हित की बात अवश्य बतावें। अतएव मैं भय को छोड़कर अपना निश्चित विचार बता रहा हूँ।'

'समय का ज्ञान रखने वालों में श्रेष्ठ कपिराज ! आपने सीता की खोज करने के लिए जो समय निश्चित किया था, उसे आप इन दिनों प्रमाद में पड़ जाने के कारण भूल गये हैं। देखिये न, यह सुन्दर शरद्-ऋतु आरम्भ हो गई है। राजाओं के लिए विजय-यात्रा की तैयारी करने का समय आ गया है, किन्तु आपको कुछ पता ही नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि आप प्रमाद में पड़ गये हैं। इसीलिये लक्ष्मण यहाँ आये हैं। महात्मा श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी का अपहरण हुआ है, इसलिये वे बहुत दुःखी हैं। अतः लक्ष्मण के मुख से उनका कठोर वचन भी सुनना पड़े तो आपको चुपचाप सह लेना चाहिये, क्योंकि आपकी ओर से अपराध हुआ है। हाथ जोड़कर लक्ष्मण को प्रसन्न करने के सिवा आपके लिए और कोई उचित कर्तव्य नहीं देखता। जिसे पीछे हाथ जोड़कर मनाना पड़े, ऐसे पुरुष को क्रोध दिलाना कदापि उचित नहीं है। विशेषतः वह पुरुष जो मित्र के किये हुए पहले उपकार को याद रखता हो और कृतज्ञ हो, इस बात का अधिक ध्यान रखे। श्रीराम और लक्ष्मण के आदेश की आपको मन से भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। श्रीराम के अलौकिक बल का ज्ञान तो आप के मन को है ही।' (वा.रा.४।३२।१३-२२)

प्रायः यह देखा गया है कि राज्य का पतन, मंत्री के सम्यक् मंत्रणा न देने से एवं रोगी का मरण चिकित्सक की उपेक्षा से हो जाया करता है। इन नीतिपरक सिद्धान्तों का विवेचन गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार किया है-

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।। मानस ५।३७

हनुमानजी ने भयरहित होकर सुग्रीव को एक योग्य मंत्री के समान उचित सलाह प्रदान की है। ऐसी नेक मंत्रणा तो स्वयं राजनीति के पंडित रावण को भी उसके मंत्रियों ने नहीं दी थी। इसी दोष का उद्घाटन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने टिप्पणी की है-

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। वा.रा.६।१६।२१

'सदा प्रिय लगने वाली मीठी-मीठी बातें कहने वाले तो सुगमता से मिल सकते हैं, किन्तु जो सुनने में अप्रिय तथा परिणाम में हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुनने वाले दुर्लभ होते हैं।' महर्षि वाल्मीकि ने हनुमान जी के मंत्रणा-कार्य का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि 'वे शास्त्र के निश्चित सिद्धान्त को जानने वाले थे। कब क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इन बातों का उन्हें यथार्थ ज्ञान था।' जब हनुमान जी ने यह देखा कि सुग्रीव अपनी प्रयोजन-सिद्धि पर धर्म और अर्थ के संग्रह में शिथिलता दिखाने लगे हैं और युवती स्त्रियों के साथ क्रीड़ा-विलास में मदहोश रहते हैं, तब उन्हें स्वेच्छाचारी होने से रोकने के लिए वे सत्य एवं लाभदायक धर्म और अर्थ से युक्त वचन कहते हैं, किन्तु इसमें भी वे उन्हें ऐसे वचनों से उद्बोधित करते हैं जिनसे सुग्रीव का अपमान भी न हो और वे श्री राम के साथ पूर्व संकल्पित कार्य की ओर अग्रसर भी हो जाएँ।

हनुमान जी ने कहा-

राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता। मित्राणां संग्रहः शेषस्तद् भवान् कर्तुमर्हति।।
यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते। तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते।।
यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप।समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते।। वा.रा.४।२९।९-११

'राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परा से आयी हुई लक्ष्मी को भी बढ़ाया, किन्तु अभी मित्रों को अपनाने का कार्य शेष रह गया है, उसे आप को इस समय पूर्ण करना चाहिये। जो राजा 'कब प्रत्युपकार करना चाहिये'- इस बात को जानकर मित्रों के प्रति सदा साधुतापूर्ण बर्ताव करता है, उसके राज्य, यश और प्रताप की वृद्धि होती है।
राजन् ! जिस राजा का कोश, दण्ड(सेना), मित्र और अपना शरीर- ये सब के सब समान रूप से उसके वश में नहीं रहते हैं वह विशाल राज्य का पालन एवं उपयोग नहीं कर पाता।'

श्रीहनुमान जी ने सामनीति के अनुसार आगे भी सुग्रीव को परामर्श देते हुए कहा-'आप सदाचार से सम्पन्न और नित्य सनातनधर्म के मार्ग पर स्थित हैं, अतः मित्र के कार्य को सफल बनाने की आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसे यथोचित रूप से पूर्ण कीजिये, क्योंकि कार्य-साधन का उपयुक्त अवसर बीत जाने पर जो मित्र-कार्यों में लगता है, वह बड़े से बड़े कार्यों को सिद्ध करके भी मित्र के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला नहीं माना जाता। शत्रुदमन! श्री राम हमारे सुहृदय हैं, उनके कार्य का समय व्यतीत होता जा रहा है। अतः विदेहकुमारी की खोज प्रारम्भ कर देनी चाहिये। श्रीराम समय का ज्ञान रखते हैं, उन्हें अपने

कार्य की सिद्धि के लिए शीघ्रता है तो भी वे आपके अधीन बने हुए हैं। वे संकोचवश आपसे नहीं कहते कि उनके कार्य का समय बीत रहा है। वे चिरकाल तक मित्रता निभाने वाले तथा आपके अभ्युदय के हेतु हैं। आपका कार्य भी वे सिद्ध कर चुके हैं। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिये। यदि उनके कहने के पूर्व ही हम लोग कार्य आरम्भ करेंगे तो समय बीता हुआ नहीं माना जायेगा। अतः अब पराक्रमी वानरों को आज्ञा देने में विलम्ब करना उचित नहीं। आपको स्मरण होगा, श्रीराम को वाली के प्राण लेने में जरा भी हिचक नहीं हुई। वे आपका प्रिय कार्य कर चुके हैं। अतः अब हम लोग विदेहकुमारी सीता का इस भूतल और आकाश में भी पता लगायें।'

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि ज्योंही हनुमान जी ने यह अनुभव किया कि एक पक्ष ने अपने पूर्व वचन का पालन किया और दूसरा पक्ष उसके प्रति अत्यन्त उदासीन सा हो गया, त्यों ही उन्होंने सुग्रीव को साम, दाम, भेद और दण्डनीति से भलीभाँति समझाकर उन्हें कर्तव्य-भान कराया । यथा-

इहाँ पवन सुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा।।
निकट जाइ चरननि्ह सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।। मानस ४।१८।१-२

आज की शासन व्यवस्था में भी मंत्रियों का प्राधान्य होता है, किन्तु मंत्रियों में वैसी कुशलता, चातुर्य एवं कर्तव्य के प्रति दृढ़ता नहीं पायी जाती, जैसी हनुमान जी ने सचिव के रूप में दिखायी है। वस्तुतः हनुमान जी के कहने पर सुग्रीव ने वानरों के बुलाने के लिए यह अध्यादेश जारी किया कि सब जगह यह प्रचारित कर दिया जाय कि जो वानर पन्द्रह दिनों के अंदर किष्किन्धा नहीं आएगा,उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा।' तत्पश्चात् वे अन्तःपुर में लौट गये। अर्थात् वे हनुमान जी की मंत्रणा पर भी श्रीराम के प्रति किये संकल्प पर दृढ़ नहीं हुए। इस पर श्रीराम ने लक्ष्मण को उद्बोधित कर सुग्रीव को भय दिखलाकर रास्ते पर लाने के लिए प्रेषित किया । इस आकस्मिक भय को देखकर सुग्रीव अत्यन्त भयातुर हो गए और उन्होंने तुरन्त ही अपनी मंत्रिपरिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि 'क्या कारण है, श्रीराम के कार्य को मैं कर रहा हूँ, फिर भी वे मुझ पर कुपित हैं? क्या किसी ने मेरे विरुद्ध उन्हें कुछ उल्टा सुल्टा कहकर भड़काया है?' श्रीहनुमान जी ने उनसे कहा- 'श्रीराम ने बिना लोकापवाद की परवाह किये आपका प्रिय कार्य किया है। अतः निःसंदेह वे आप पर कुपित नहीं हैं। उन्होंने जो आपके पास लक्ष्मण जी को भेजा है, इसमें सर्वथा आपके प्रति उनका प्रेम ही कारण है।'

आदर्श राज्य के प्रणेता -मर्यादापुरुषोत्तम राजा राम ने चित्रकूट में भरत को राज्य-संचालन की व्यावहारिक शिक्षा देते हुए इस बात का आग्रह किया था कि मन्त्रि-परिषद् में केवल ऐसे व्यक्ति ही सम्मिलित किए जायें,जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप-दादों के समय से ही काम करते आ रहे हों तथा बाहर-भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों।' उन्होंने यह भी परामर्श दिया कि 'प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्य और छोटी श्रेणी के छोटे ही कामों पर नियुक्त किया जाय।' उन्होंने पूछा-'क्या तुमने अपने ही समान शूरवीर; शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मंत्री बनाया है?' यथा-

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः। कुलीनाश्चेतिज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः।। वा.रा.२।१००।१५

इस श्लोक में इस बात का संकेत किया है कि एक सुयोग्य मंत्री में किन-किन गुणों का समावेश होना चाहिये। यहाँ भारतीय राजदर्शन में अपेक्षित गुणों के जिन-जिन तत्वों का समावेश है, यदि उनकी कसौटी पर श्रीहनुमान को आँका जाय तो हम पायेंगे कि या तो हनुमान की योग्यता के आधार पर ही मंत्री की योग्यता का मापदण्ड निर्धारित किया गया है अथवा मंत्री पद की समस्त योग्यता का उनमें समावेश था। जब शत्रु-शिविर से अरि-भ्राता विभीषण शरणापन्न होकर श्रीराम-शिविर में प्रवेश पाना चाहते हैं, तब श्री राम ने अपनी सुरक्षा-समिति के परामर्शदाताओं से विधिवत् मन्त्रणा चाही थी। सुरक्षा-परिषद् के समक्ष सुग्रीव ने, जो उनके सुरक्षा विभाग के प्रधान थे, समस्या रखी- 'यह शत्रु-शिविर से आया है और जब यह संकटकाल में अपने सगे भाई का भी साथी नहीं हुआ, तब यह हमारा कैसे हो सकता है? अतः मेरी राय है कि इसे बंदी बनाने की अथवा इसके वध की आज्ञा हमें शीघ्र प्रदान की जाय।'

श्रीराम महान् नीतिज्ञ थे। उनके समान नीति प्रीति-परमार्थ और स्वार्थ का विशेषज्ञ भी अन्य कोई नहीं था। अस्तु, उन्होंने प्रज्ञाचक्षु कुमार अंगद से इस पर मन्तव्य प्रकट करने के लिए कहा। इस पर अंगद ने कहा-'प्रभो ! यह चूँकि हमारे लिए अपरिचित है, अतः सहसा इस पर विश्वास न करते हुए हमें इसके गुण-दोषों का पता लगाकर ही कोई नीति निर्धारित करनी चाहिये। अतः इसके परीक्षण के बाद जैसा उचित हो, वैसा करना ही श्रेयस्कर होगा।' जब वृद्ध नीतिज्ञ जाम्बवान् से इस पर मंत्रणा चाही गई तो उन्होंने स्पष्ट कहा- 'विदेशियों, शत्रु-शिविर से सम्बन्धित या अरिमित्रवर्ग पर कदापि विश्वास न किया

जाय, क्योंकि वे कभी भी धोखा दे सकते हैं।' इसी प्रकार शरभ, मैन्द आदि अन्य मंत्रियों से जब विभीषण के प्रति नीति निर्धारण के प्रश्न पर सलाह माँगी गई तो वे भी यही कहते हैं कि शत्रु के साथ कोई रियायत न की जाय, बल्कि इसे बंदी बनाकर इसका वध कर दिया जाय।' संभवतः ये सब सुग्रीव की ठकुरसुहाती मंत्रणा में ही अपना मत प्रकट करते हैं। जब श्रीराम ने मनोवैज्ञानिक, बाह्य चेष्टा से मन के भावों को सही-सही भाँप लेने वाले हनुमान से पूछा, तब उन्होंने यही परामर्श दिया- 'विभीषण को एकदम अपने शिविर में बिना संकोच के प्रवेश दे दिया जाय। ये बिल्कुल शरण देने योग्य, लाभदायक और हमारे लिए सहायक सिद्ध होंगे।' इस पर समस्त विरोधी विचार रखने वाले मंत्रियों ने विशेषकर सुग्रीव ने महान् आपत्ति प्रकट की और कहा-'आपके पास कौन-से प्रमाण हैं, जिनके आधार पर आप इसे निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं? क्या यह अभी शरण के बहाने हमारे भेदों को जानकर निद्रावस्था में श्रीराम या लक्ष्मण या हमारे सैनिकों पर प्रहार नहीं कर सकता?

सुग्रीव की इन आशंकाओं का समाधान करने के लिए श्रीहनुमान ने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा -'प्रभो ! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद, विवाद, तर्क, स्पर्द्धा, अधिक बुद्धिमता के अभिमान या किसी कामना से नहीं करूँगा; मैं तो कार्य की गुरुता पर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही कहूँगा। आपके मंत्रियों ने अर्थ-अनर्थ, गुण-दोष की परीक्षा का जो सुझाव दिया है वह प्रयोजनहीन है, क्योंकि वह कह रहा है-'मैं रावण का छोटा भाई विभीषण हूँ और आपकी शरण चाहता हूँ। अतः अब जासूसी की इसमें क्या आवश्यकता है? वह अपना ठीक-ठीक परिचय दे रहा है। पुनश्च उसकी परीक्षा लेने के लिए समय की अवधि चाहिये; किन्तु वह अभी शरण की याचना कर रहा है। अतः निर्णय तो तुरन्त ही करना है। यदि परीक्षण के लिए हम उसे अभी कोई काम सौंपेगे तो क्या नवीन व्यक्ति को सहसा किसी महत्वपूर्ण कार्य को सौंप देना बुद्धिमानी है? प्रभो ! विभीषण तो आपके उद्योग, रावण के मिथ्याचार, वाली के वध और सुग्रीव के राज्याभिषेक के समाचार सुनकर राज्य पाने की इच्छा से समझ बूझकर ही यहाँ आये हैं-'श्रीराम अवश्य ही शरण में आये की रक्षा करते हैं' अतः उनका संग्रह मेरी दृष्टि से उचित ही है। मेरे मन में इनके प्रति कोई संदेह नहीं; क्योंकि दुष्ट पुरुष कभी भी निश्शंक होकर सामने नहीं आ सकता। इसके सिवा उनकी वाणी में भी कोई दोष नहीं। कोई भी अपने आकार को कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतरी भाव कभी छिप नहीं सकते। बाहर का आकार पुरुषों के आन्तरिक भाव को बलात् प्रकट कर देता है।" (वा.रा.६।१८)

आगे की घटनाओं से श्री हनुमान के ये वचन अक्षरशः सिद्ध होते हैं। लंका-अभियान में विभीषण के द्वारा श्री राम-दल को अनेक स्थलों पर सहायता मिली थी। यदि विभीषण इन्द्रजीत के गुप्त यज्ञ की बात न बताता और लक्ष्मण द्वारा उस यज्ञ का विध्वंस न होता तो कभी भी शक्ति समर भूमि में उसे पराजित नहीं कर सकती थी। इसी प्रकार कृत्रिम सीता के वध की छद्म चाल को भी यदि विभीषण नहीं बताते तो वानरों का उत्साह उसी क्षण समाप्त हो गया होता; क्योंकि शत्रु की इस चाल से स्वयं श्रीराम अचेत हो गये थे। किन्तु जब विभीषण ने कहा कि 'यह कृत्रिम ऐन्द्रजालिक शक्ति का सहारा लेकर वानरों को अनुत्साहित करने का उपक्रम मात्र है। सीता को मारना तो दूर, उन्हें कोई देख भी नहीं सकता- ऐसा रावण का प्रबन्ध है। इसके अनुसार रावण सीता का वध किसी भी दशा में नहीं कर सकता।' इन सब बातों से स्पष्ट है कि विभीषण को शरण देने की नीति में भावी सफलता के बीज निहित थे। इससे राक्षसों के अनेक भेदों का पर्दाफाश हो सका था। विभीषण ने मानव-वेष में वानरों के वेष में आये राक्षसों को पहचान कर उन-(शुक-सारण) की रामदल में जासूसी तक रोक डाली, जिससे राक्षसों की शक्ति क्षीण हुई। सच पूछा जाय तो श्रीराम की रावण पर विजय का श्रेय श्रीराम के अतिरिक्त यदि [illegible] को दिया [illegible]

सत्यार्थ प्रकाश (मानस संस्करण)

[illegible] को प्रकाशित करने वाले दीपचन्द जी आर्य को और उसके पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर के मानक संस्करण को प्रकाशित करने वालों को। इन्होंने यह कार्य न किया होता तो......
– संभाजी पंवार

यह सुखद बात है, सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर द्वारा विशिष्ट एवं स्थापित विद्वानों के समूह सेसहयोग लेकर द्वितीय संस्करण के आधार पर सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किया गया, जो स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है ।
– प्रसिद्ध भजनोपदेशक महाशय वेगराज आर्य

आवश्यक था कि आर्य समाज के ऋषि-भक्त विद्वान् इस विषय पर (सत्यार्थप्रकाश-पाठान्तर) संगठित होकर विचार करें और सर्वसम्मति से व जिन बिन्दुओं पर विद्वान् एकमत हो उन्हें स्वीकार करें सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाशन हो। अतः 'सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर' के प्रयास से, लम्बे समय तक प्रतीक्षा के पश्चात्, आर्य जगत् के शीर्षस्थ विद्वान् आचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री की अध्यक्षता में एक विद्वत् समिति बनी जिसने सत्यार्थ प्रकाश की मौलिकता को बरकरार रखते हुए उस पर समग्र रूप से विचार कर सत्यार्थ प्रकाश को एक विद्वत् स्वीकार्य रूपदिया और सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से उसका प्रकाशन किया गया। जिन लोगों ने इस संस्करण को देखा है उन्होंने इसे पसन्द किया है क्योंकि ये विद्वान् आर्य जगत् केसर्वमान्य विद्याधर ऋषि-भक्त अधिकारी विद्वान् हैं ।
–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

श्री मुनीन्द्र सिंह भाटी को याद किया गया।

न्यास के माता लीलावन्ती सभागार में दिनांक ४ मार्च १२ को आयोजित सत्संग सभा में न्यास के विशिष्ट सहयोगी रहे। स्मृति-शेष श्री मुनीन्द्र सिंह जी भाटी के जीवन पर

न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक आर्य ने संक्षिप्त प्रकाश डाला। इस सत्संग सभा में डॉ. ए.एल.तापड़िया ने होली पर्व के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचारों का प्रतिपादन किया। इस अवसर पर राजस्थान अ.जा.ज.जा. आयोग के उपाध्यक्ष श्री दिनेश तरवाड़ी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। श्री मुनीन्द्र सिंह भाटी के सुपुत्र श्री राजेन्द्र सिंह व अन्य परिवारीजनों ने कहा कि इस कार्यक्रम से वे अभिभूत हैं। उदयपुर में प्रथम बार ही ऐसे आयोजन को रखा गया है जिसमें समाज द्वारा उनके पिता के सहयोग को स्मृत किया जा रहा है। उन्होंने न्यास से जुड़े रहने का मानस प्रदर्शित किया। पूर्व में श्री इन्द्रदेव पीयूष व श्री रवीन्द्र राठौड़ ने भजन प्रस्तुत किए। कार्यक्रम का संचालन श्री नारायण मित्तल ने किया। इस अवसर पर न्यास मंत्री श्री भवानी दास आर्य ने न्यास के मुख-पत्र सत्यार्थ-सन्देश के बारे में बोलते हुए कहा कि जहाँ भी यह पत्रिका गई है। वहाँ से बड़ी ही सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त हो रही है। सभी लोगों को इसका सदस्य बनना चाहिए।

श्रीमद् दयानन्द जयन्ती पर आर्य कन्या विद्यालय समिति अलवर द्वारा विशाल शोभा यात्रा का आयोजन किया शोभा यात्रा का नेतृत्व विद्यालय समिति के प्रधान श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता,उप प्रधान श्री अशोक आर्य,अलवर नगर विकास प्रन्यास के अध्यक्ष श्री प्रदीप आर्य व अन्य गणमान्य आर्यों द्वारा किया गया। आकाश में रंग बिरंगे गुब्बारे छोड़कर शोभा यात्रा का शुभारम्भ जिला कलक्टर-अलवर, श्री ए.टी.पेंडरेकर ने किया। इस अवसर पर सभा का संचालन राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री अमर सिंह आर्य ने किया। निदेशक - कमला शर्मा

आर्य समाज हिक्सविले न्यूयार्क के निज के भवन का निर्माण सम्पूर्ण

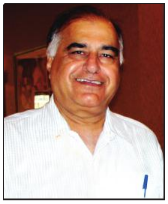

श्री वीरमुखी जी ने बताया कि समाज में प्रति सप्ताह की नियमित गतिविधियाँ प्रति रविवार ४ से ६ सायं चल रही हैं। बच्चों के लिए माह के तृतीय सप्ताह में विशेष कार्यक्रम रखा जाता है। श्री मुखी ने यह भी बताया कि २४ मार्च २०१२ से बच्चों के लिए हिन्दी, गुजराती व मराठी की विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जा रहा है।

होलिकोत्सव मनाया

आर्यसमाज शिकागोलैण्ड, यू.एस.ए. द्वारा दिनांक ११ मार्च २०१२ को डॉ. सुखदेव चन्द सोनी की अध्यक्षता में धूमधाम व उत्साहपूर्वक मनाया गया। श्री नरेन्द्र एन. वर्मा द्वारा मधुर संगीत कार्यक्रम की विशेषता रही।

वेद-ऋचा और मधुर भजनों के माध्यम से मना स्वामी दयानन्द जन्म दिवस

पुनर्जागरण के पुरोधा, आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का जयन्ती समारोह, आर्य समाज मानसरोवर के भवन में मनाया गया। अग्निहोत्र के साथ प्रारंभ हुए समारोह में स्वामी दयानन्द का कृतित्व जहाँ भजनों से मुखरित था तो शीर्ष वैदिक विद्वानों ने भी प्रवचनों में प्रकट किया। भजनों की स्वर-लहरियाँ श्रीमती कृष्णा वत्स, श्रुति शास्त्री आदि की प्रस्तुति ने बिखेरी। राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सत्यव्रत सामवेदी ने ऋषि के कृतित्व के प्रसंग सुनाए। इसके अतिरिक्त डॉ. कृष्णपाल का भी उद्‌बोधन हुआ। संचालन डॉ. संदीपन आर्य ने किया। प्रधान कालरा जी ने सभी का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम में नगर के सभी आर्य समाजों ने भाग लिया।

- ईश्वर दयाल उपप्रधान, आर्य समाज मानसरोवर, जयपुर

नवलखा महल, उदयपुर में वेद सम्मेलन का आयोजन

दि.२८, २९, ३० अप्रैल २०१२

सस्वर वेदपाठी करेंगे वेदपाठ

वेद विद्वानों के वेद-विषय पर महत्वपूर्ण प्रवचन

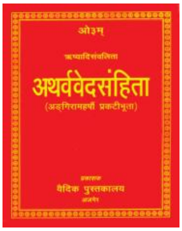

महर्षि सांदीपनी राष्ट्रीय वेद-विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के सहयोग से आयोज्य इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले निम्न विद्वानों व अतिथियों के नाम उल्लेखनीय हैं - स्वामी (डॉ.) ओम् आनन्द सरस्वती, स्वामी प्रवणानन्द, स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती, महाशय धर्मपाल, डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, डॉ. रूपकिशोर शास्त्री, प्रो. वेद प्रकाश, डॉ. महावीर मीमांसक, आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय , डॉ. सोमदेव शास्त्री, डॉ. रघुवीर वेदालंकार, आचार्य हरिप्रसाद व्याकरणाचार्य, पं. वेदप्रिय शास्त्री, आचार्या धारणा याज्ञिकी, प्रो. सुभाष वेदालंकार, कै. देवरत्न आर्य, श्री आनन्द कुमार आर्य, (डॉ.) आचार्य वागीश शर्मा, आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा।

इस गाँव में बेटी के जन्म के साथ पौधा लगाया जाता है।

बिहार में एक ऐसा गाँव है, जहाँ बेटियों के जन्म के साथ पौधारोपण की परंपरा है। भागलपुर जिले के धरहरा गाँव में जब किसी घर में बेटी जन्म लेती है तो तुरंत ही उस परिवार के सदस्य गाँव में १० पौधे लगाते हैं।

प्रस्तुतकर्ता- सुभाष चन्द्र

प्रतिस्वर

समादरणीय भाई अशोक जी, सादर नमस्ते

पत्रिका सत्यार्थ-सन्देश और आपका पत्र दोनों प्राप्त हुये। सुन्दर प्रकाशन के लिए अनेकानेक बधाई। पत्रिका दर्शनीय, पठनीय, कागज और मुद्रण अति सुन्दर है। न्यास की व्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए ऐसी पत्रिका का प्रारम्भ करना आवश्यक था जिससे न्यास की जानकारी हजारों व्यक्तियों तक पहुँचती रहे। यह एक अच्छा निर्णय लिया, आर्य जगत् को इससे लाभ मिलेगा।

-प्रकाश आर्य
मंत्री-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

परम आदरणीय, सादर नमस्कार

सत्यार्थ-सन्देश का अंक मिला, धन्यवाद। पत्रिका युगपुरुष स्वामी दयानन्द जी तथा उनके विचारों को वहन करने वाले 'सत्यार्थ प्रकाश' को घर-घर तक पहुँचाने वाली होने के कारण अच्छी लगी। सम्पादकीय 'ये कहाँ आ गये हम' झकझोड़ने वाला तथा हमें गहरी निद्रा से जगाने वाला रहा। क्या इस पर अमल करते हुए हम देश को सुराज्य दे पायेंगे।

- प्रो. श्यामलाल कौशल
शक्तिनगर, ग्रीन रोड़-रोहतक

श्रीमान् सम्पादक महोदय, नमस्ते

न्यास द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'सत्यार्थ-सन्देश' प्राप्त हुई। पढ़ा। बहुत ही मनोरम, आकर्षक, सामयिक एवं स्वच्छ मुद्रित पत्रिका है। पत्रिका में जो विषय-वस्तु वर्णित है, वह वास्तव में अर्वाचीन समय की कसौटी पर खरी उतरेगी व अपनी संस्कृति को भूल चुके युवाओं को मार्ग प्रदर्शित करेगी। डॉ. प्रिया अग्रवाल द्वारा लिखित लेख Pre-Postnatal Care and Satyarth Prakash स्वामी दयानन्द के चिरकाल वर्णित संस्कारविधिः पर आधारित एक अच्छा लेख है जो महिलाओं के लिए बहुत ही उपयोगी है।

सूबेदार मेजर (रि.) नन्नूराम डांगी (आर्य)
पलवल, हरियाणा

सम्मानीय आर्य जी, नमस्ते

माघ शुक्ल पक्ष पत्रिका 'सत्यार्थ-सन्देश' मेरे सामने है। सभी लेखों, चित्रों का चयन प्रशंसनीय है, 'मातृभाषा का प्रभाव' लेखक को धन्यवाद पहुँचा दें।

नानक चन्द लोहिया, हल्द्वानी

अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के मूल सत्यार्थ प्रकाश के सर्वाधिक नजदीक, तत्कालीन शैली का संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित

सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) **अवश्य खरीदें।**

प्राप्ति स्थल : श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर - ३१३००१

- अधिकारी वर्ग से विशेष निवेदन-कृपया अपनी संस्था को 'सत्यार्थ-सन्देश' परिवार से अवश्य जोड़े।
- विद्वानों से निवेदन है कि वे केवल सत्यार्थ-सन्देश के लिये लिखे गये अपने संक्षिप्त, सारगर्भित लेख प्रेषित करने की कृपा करें।

Prof. I.J.Bhatia's book

ORISON SWETT MARDEN

HIS LIFE AND IDEAS

is now available at: Govindram Hasanand
4408, Nai Sarak, Delhi- 110006
Tel: 65360255, 23977216
Email: ajayarya@vsnl.com, Website: www.vedicbooks.com

SCHOLARS' COMMENTS ON THE BOOK:

Once in a way, one comes across a literary work which leaves footprints for its eternal values for the posterity. Every page in the book represents the essence and philosophy of Marden in a true sense. These are like golden nuggets of paragraphs after paragraphs with immense moral values.

- Harish Ganatra.

Every page of this book is worth its value in gold. The inspiring life of Orison Swett Marden is also presented very beautifully in this volume. All the twenty chapters in the book are like twenty precious diamonds in a royal tiara. School and College libraries as well as the public libraries in India and abroad must have this volume without fail.

–Principal Bejan N. Desai.

The author has done a great job compiling the life and ideas of Dr. Orison Swett Marden into a compact volume. The book contains thought-provoking and inspiring material that would surely change for the better the life of every reader. I strongly recommend this book to every young man and woman who wishes to lead a complete and meaningful life.

- Prof. J.M. Manchanda.

I read "Orison Swett Marden – *His life and Ideas*" with great interest. It is a unique work in the field of Art of Living. The author has done fantastic contribution to the field of knowledge by writing this book for the younger generation.

–Dr. Shyam Singh Shashi.

The book is a superb compilation of the writings of Orison Swett Marden. At a time when values are slipping away, such works are very important. I not only enjoyed but benefited from reading several parts of the book.

–Russi M. Lala.

यश की अमर धरोहर ....

डोला पालकी आन्दोलन

गढ़वाल के निवासियों का एक बहुत बड़ा वर्ग उन अछूत समझे जाने वाले लोगों का है, जिन्हें "डूम" या "डोम" कहा जाता है। ये बढ़ई, लोहार, दर्जी आदि के विविध शिल्पों द्वारा अपना निर्वाह करते हैं, पर समाज में इनकी स्थिति हीन समझी जाती है। आजकल इन्हें "शिल्पकार" भी कहा जाने लगा है, क्योंकि शिल्प में ये अत्यन्त निपुण हैं। यह नाम इन्हें लाला लाजपत राय द्वारा दिया गया था।

कहा जाता है कि डूम (शिल्पकार) लोग इस पार्वत्य प्रदेश के पुराने आदिनिवासी थे। जिन लोगों (ब्राह्मणों और राजपूतों) को वहाँ ऊँचा माना जाता है, और जो "विट्" नाम से प्रसिद्ध हैं, वे वहाँ बाद में आकर बसे। अपने से पूर्ववर्ती निवासियों को पराजित कर उनकी सम्पत्ति पर उन्होंने अपना स्वत्त्व स्थापित कर लिया और उन्हें अपना गुलाम बना लिया। विटों के सम्मुख उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति अत्यन्त हीन हो गयी। उन्हें अछूत समझा जाने लगा और उन्हें सामान्य नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया। डूम या शिल्पकार लोग जीवन-निर्वाह के लिए पूर्णतया विटों पर आश्रित थे, और उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं था। आर्यसमाज ने इस दशा से उनका उद्धार किया।

सन् १९१८ में गढ़वाल में एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था। दुर्भिक्ष-पीड़ित जनता की सहायता के लिए पंजाब आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता महात्मा हंसराज और स्वामी श्रद्धानन्द अपने स्वंयसेवकों के साथ गढ़वाल गये और वहाँ उन्होंने भूख से तड़पते हुए लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की। दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता करते हुए इन आर्य नेताओं का ध्यान डूमों की ओर गया; उन्होंने इन लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराकर आर्यसमाज में प्रविष्ट करना शुरु कर दिया। बिजनौर जिले की उत्तरी सीमा गढ़वाल के साथ लगती है। नजीबाबाद के क्षेत्र में आर्य समाज का अच्छा प्रचार था। अतः स्वाभाविक रुप से वहाँ के कर्मठ आर्य कार्यकर्ताओं का भी ध्यान गढ़वाल के डूमों की ओर गया और पण्डित आनन्दीलाल तथा मुंशी लक्ष्मीनारायण आदि आर्यों ने उनको समाज में समुचित स्थिति प्रदान कराने के लिए गढ़वाल प्रस्थान कर दिया। मादक द्रव्य निवारिणी सभा, प्रयाग के प्रचारक पण्डित देवीदत्त भी उनके साथ थे। फरवरी १९१८ में नजीबाबाद आर्यसमाज की ओर से दुगड्डा के समीप बोर ग्राम के डूमों में धर्म-प्रचार प्रारम्भ कर दिया गया। डूमों ने उत्साहपूर्वक महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का स्वागत किया और ५०० के लगभग डूमों को यज्ञोपवीत धारण कराके आर्यसमाज में प्रविष्ट कर लिया गया। विट कहाने वाले सवर्ण लोगों ने इन नये 'आर्यों' के साथ बड़ी क्रूरता का बरताव किया। उनकी जोत की जमीन उनसे छुड़वा ली और उन्हें मजदूर रखना भी बन्द कर

अभी अभी हम आर्यसमाज स्थापना दिवस मना कर चुके हैं। वर्षगाँठ हमें आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जबकि आर्यसमाज के समकालीन आन्दोलन विलुप्त प्रायः हो गये हैं, आर्य समाज ने अपनी शाखाओं,गुरुकुलों,शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से जो विस्तार प्राप्त किया है उस पर सन्तोष किया जा सकता है। पर आज आर्य समाज में एक जड़ता सी व्याप्त हो गई है। ऐसा कतई नहीं है कि आर्यसमाज अप्रासंगिक हो गया है। उसके समक्ष करने को कोई कार्य नहीं है। देखा जाय तो पाखण्ड, अन्ध- विश्वास,गुरुडम वाद,चारित्रिक पतन,भ्रष्टाचार के विषधर फन फैलाए फुँफकार रहे हैं। दलितोद्धार,शुद्धि , जन्मगत जाति रहित समाज के निर्माण के कार्य आज भी आर्य समाज की ओर निहार रहे हैं। पर हम कोई सार्थक आन्दोलन प्रणीत करने में सफल नहीं हुए हैं। जनगणना जाति-आधार पर की जा रही है। आज की राजनीति स्वार्थवश इसे खाद- पानी दे रही है। पर हम इसे 'विमर्श' के मुद्दे के रूप में भी प्रस्तुत न कर सके। सच तो यह है कि ३०-३५ वर्ष के आर्य समाजी/गैर आर्य समाजी युवा के समक्ष जो सुविधा-भोगी आर्य समाज है,वह कल्पना भी नहीं कर सकता कि इस महान् संगठन ने,इसके अधिकारियों ने,इसके प्रचारकों ने वैदिक आदर्शों की स्थापनार्थ अपने गुरु महर्षिवर देव दयानन्द के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए अकल्पनीय यातनाओं को झेला था। उन अमर सपूतों के रौंगटे खड़े कर देने वाले कार्यों को इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम प्रकाशित करने का मानस इस कारण रखते हैं कि ऐसे प्रसंग हमें झकझोर सकें,युवा पीढ़ी के समक्ष प्रेरणा-स्रोत के रूप में स्थापित हो सकें। सप्तखण्डीय आर्य समाज का प्रकाशित इतिहास इसका स्रोत रहेगा। विद्वज्जन भी इस लेखमाला में सहायक हो सकते हैं।

-सम्पादक

दिया। उनके यज्ञोपवीत तोड़ डाले और आर्य समाज के कार्यकर्ताओं व प्रचारकों पर लाठियों द्वारा आक्रमण किया। पर इससे आर्य लोग घबराये नहीं। उन्होंने अपने कार्य को जारी रखा, जिससे गढ़वाल के डूमों (शिल्पकारों) में वैदिक-धर्म के प्रचार में निरन्तर वृद्धि होती गयी। इस बीच आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा भी गढ़वाल में आर्य समाज के प्रचार तथा दलितोद्धार के लिए प्रयत्न जारी था। सभा की ओर से अनेक शिक्षणालय भी वहाँ स्थापित किये जा रहे थे और सवर्ण जातियों के भी अनेक व्यक्ति आर्यसमाज के प्रभाव में आने लग गये थे।

डूमों (शिल्पकारों) को आर्य समाज में प्रविष्ट करने और समाज में उन्हें समुचित व न्याय्य स्थिति प्रदान करने के लिए जो प्रयत्न आर्य प्रचारकों द्वारा किया जा रहा था, उसके कारण एक नये आन्दोलन या संघर्ष का प्रारम्भ हुआ, जिसे 'डोला-पालकी आन्दोलन' कहते हैं। गढ़वाल के पार्वत्य प्रदेश में विवाह के पश्चात् वर-वधू को ले-जाने के लिए डोली और पालकी का प्रयोग किया जाता था। डोली में वधू बैठती थी और पालकी में वर। पर इन सवारियों का प्रयोग केवल उच्च वर्ग के व्यक्ति ही कर सकते थे, दलित या डूम लोग नहीं। डोली और पालकी का निर्माण डूमों द्वारा किया जाता था और इन्हें कन्धे पर उठाकर ले-जाने का काम भी उन्हीं से लिया जाता था, पर वे स्वयं इनका प्रयोग नहीं कर सकते थे। आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए शिल्पकारों को अपनी यह हीन स्थिति सह्य नहीं थी। रहन-सहन तथा धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान में वे अब सवर्णों से किसी भी प्रकार हीन नहीं थे। उन्होंने वर-वधू को डोला-पालकी में ले-जाना शुरु किया, जिसे विट लोग सहन नहीं कर सके। उन्होंने इसे धर्म का 'विनाश' घोषित किया, और गाँव-गाँव में घूमकर सवर्ण लोगों को शिल्पकारों के विरुद्ध भड़काना शुरु कर दिया। 'आर्य' शिल्पकारों पर भयंकर अत्याचार किये जाने लगे। जब कोई आर्य-वर-वधू को डोला-पालकी पर ले-जाने लगता, तो सनातनी विचारों के ब्राह्मण और राजपूत बरात पर टूट पड़ते, डोला-पालकी को जला देते, भोजन-सामग्री नष्ट कर दी जाती और बरातियों को बुरी तरह से पीटा जाता। पर इससे आर्य लोग घबराये नहीं। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उनकी बारातें सप्ताहों तक जंगलों में रुकी रहतीं, पर वे वर-वधू को डोला-पालकी पर ले-जाने के

आग्रह का परित्याग न करते, क्योंकि आर्य समाज द्वारा उन्हें 'डूम' से 'आर्य' बना दिया गया था। वे यज्ञोपवीत धारण करने लगे थे, शिक्षित होने लगे थे। वे सन्ध्या-हवन किया करते थे। विविध वैदिक संस्कार भी उनके घरों में होने लगे थे और वे अपने नामों में 'राम', 'सिंह' और 'आनन्द' आदि भी प्रयुक्त करने लगे थे। जब यथार्थ में वे सवर्ण ब्राह्मणों और राजपूतों की तुलना में किसी भी प्रकार हीन नहीं रह गये थे, तब वे अपने सामान्य नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष क्यों न करते? उनके द्वारा विटों के अत्याचारों का प्रतिरोध करने के लिए सत्याग्रह किया गया और अदालतों के दरवाजे भी खटखटाये गए।

डोला-पालकी आन्दोलन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक घटना का उल्लेख उपयोगी होगा। १२ फरवरी, सन् १९४० को ग्राम भौंराड (सावली) के श्री खेमसिंह समरियाल के नाती का विवाह ग्राम कफलसार के श्री मस्तूराम आर्य की पुत्री के साथ होनेवाला था। उसमें वैदिक विधि से कन्यादान किया जाना था, और वर-वधू के लिए डोला-पालकी की व्यवस्था की गयी थी। सनातनी सवर्णों को यह सह्य नहीं हुआ और उन द्वारा इस विवाह में बाधा उपस्थित करने के लिए योजना तैयार की गयी। विवाह में उस क्षेत्र के सभी आर्य निमन्त्रित थे, और वे अच्छी-बड़ी संख्या में बारात में सम्मिलित हुए थे। ठीक उस दिन जब बारात भौंराड से कफलसार प्रस्थान करने वाली थी, पट्‌टी सावली के छप्पन गाँवों के सनातनी विटों ने बारात पर हमला कर दिया। आक्रमणकारियों की संख्या छह हजार के लगभग थी। उन्होंने पालकी को जलाकर राख कर दिया, भोजन-सामग्री नष्ट कर दी, बारातियों से मारपीट की और उनके यज्ञोपवीत उतारकर जला दिये। आर्यसमाज के महान् नेता श्री जयानन्द भारतीय अस्वस्थ होते हुए भी इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए भौंराड आये हुए थे। विटों ने उन्हें अपने आक्रमण का विशेष लक्ष्य बनाया। वे उनको मौत के घाट उतार देना चाहते थे, पर उनके भक्तों और अनुयायियों ने जान पर खेलकर उनकी रक्षा की। फिर भी आक्रान्ता लोग उनका यज्ञोपवीत उतारने में सफल हो गये और उन्हें अनेक प्रकार से अपमानित किया गया। पर आर्य भी अपने निश्चय पर दृढ़ थे। वे पालकी के बिना बरात को ले जाने के लिए तैयार नहीं हुए। बारात रुकी रही, और चिरकाल तक रुकी रही। इस बीच सरकार द्वारा हस्तक्षेप किया गया और पुलिस की सहायता से पालकी के साथ बारात को कन्या-पक्ष के गाँव ले-जाया गया। सरकारी अदालत द्वारा आर्यों के

डोला-पालकी के अधिकार को स्वीकृत किया जा चुका था, इसीलिए भौंराड के एक आर्य परिवार की इस बारात को पुलिस की सहायता प्राप्त हो सकी थी।

२३, फरवरी १९४१ को लैंस डाउन में एक सर्वदल सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसके अध्यक्ष जिला बोर्ड के चेयरमैन ठाकुर हरेन्द्रसिंह रावत थे। स्थानीय आर्यों के निमन्त्रण पर उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक सभा की ओर से भी कतिपय आर्य नेता इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे, पर ठाकुर हरेन्द्रसिंह रावत ने उन्हें भाषण करने की अनुमति प्रदान नहीं की। सर्वदल सम्मेलन ने आर्यों के डोला-पालकी के अधिकार को स्वीकृत तो कर लिया, पर उससे स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ, क्योंकि सवर्ग विटों के विचारों में अभी परिवर्तन नहीं हुआ था। आर्यों पर पूर्ववत् अत्याचार होते रहे और उनके लिए डोला-पालकी का उपयोग कर सकना सुगम नहीं रहा। इस दशा में उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन प्रधान श्री मदनमोहन सेठ ने प्रदेश की सरकार से सम्पर्क कर गढ़वाल की दशा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया। उत्तरप्रदेश के राज्यपाल सर माल्कम हेली स्वयं लैंसडाउन गये और डोला-पालकी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया,पर वह भी सनातनी विटों के व्यवहार को बदल सकने में असमर्थ रहे। सन् १९४२ में भी आर्यों पर पूर्ववत् अत्याचार किए जाते रहे। सभा के मंत्री पंडित महेन्द्र प्रताप शास्त्री ने गढ़वाल जाकर वहाँ की समस्या का समाधान करने के लिए विशेष प्रयत्न किया और सार्वदेशिक सभा की ओर से भी वहाँ उपदेशक और कार्यकर्त्ता भेजे गए। प्रतिनिधि सभा द्वारा दुगड्डा में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया,जिसमें प्रदेश भर के सब आर्यसमाजों के प्रधानों और मंत्रियों को बुलाया गया। डोला-पालकी तथा आर्यों पर विटों के अत्याचारों की समस्या पर सम्मेलन में विचार हुआ, पर कोई विशेष परिणाम नहीं निकल सका। अब कट्टरपंथी सवर्ण लोगों द्वारा आर्य उपदेशकों पर भी नृशंस अत्याचार प्रारम्भ कर दिये गये। पंडित वेदव्रत आर्योपदेशक के गले में रस्सा डालकर पशुओं के समान खींचा गया और उन पर पत्थर फेंके गये। अन्य उपदेशकों पर भी हमले किए गए। जुलाई १९४५ में ग्राम कस्याली (उदयपुर) से डोला-पालकी के साथ आर्यों की एक बारात वापस आ रही थी,तो सनातनी सवर्ण लोगों ने उस पर आक्रमण कर दिया। आर्य उपदेशक पंडित वेदव्रत तथा ब्रह्मचारी बालकराम भी इस बारात के साथ थे। वेदव्रत जी को मारा-पीटा गया और ब्रह्मचारी जी से 'ओ३म्' का झण्डा छीनकर उन्हें रस्से से बाँध दिया गया और फिर उन्हें थल नदी में डुबाने का प्रयत्न किया गया। इस काण्ड के बाद ब्रह्मचारी बालकराम ने गढ़वाल के आर्यों पर किए जाने वाले अत्याचारों की ओर नेताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए अनशन व्रत करने का निश्चय किया। उनकी तीन माँगे थीं- १-कस्याली की बारात को बिना किसी रुकावट के सम्मान के साथ वापस आने दिया जाए। २- विटों ने उनसे 'ओ३म्' का जो झण्डा छीन लिया था,उसे वापस किया जाए। ३- डोला-पालकी की समस्या के समाधान के लिए एक सर्वांग संपूर्ण कानून का निर्माण किया जाए। ६ अगस्त १९४५ को ब्रह्मचारी जी ने पंडित वेदव्रत के साथ दुगड्डा के डी.ए.वी.इण्टर कॉलेज में अनशन प्रारम्भ कर दिया। दो सप्ताह बाद आर्य नेताओं के आश्वासन पर अनशन की समाप्ति कर दी गई। अब आर्य समाज द्वारा गढ़वाल में अछूतोद्धार के लिए विशेष प्रयत्न किया जाने लगा जिसके कारण कांग्रेस के नेता भी गढ़वाल की स्थिति की उपेक्षा नहीं कर सके। सन् १९४६ में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने गढ़वाल का दौरा किया और एक सार्वजनिक सभा में डोला-पालकी की समस्या पर बोलते हुए उन्होंने कहा,'मुल्क में समान रूप से सबका इन्तजाम किया जाएगा। किसी भी हालत में अछूतों पर अत्याचार नहीं होने दिए जाऐंगे। आप लोग कांग्रेस को वोट दें या न दें,लेकिन डोला-पालकी वाले अत्याचार किसी भी हालात में बर्दाश्त नहीं किये जाऐंगे।' श्री जयानन्द भारतीय जैसे महान् आर्य नेता की तपस्या तथा ब्रह्मचारी बालकराम सदृश आर्यवीरों के त्याग से अन्त में डोला पालकी आन्दोलन में आर्य समाज को सफलता प्राप्त हुई और उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा 'सामाजिक असमर्थता निवारक कानून' बनाया गया,जिसके कारण नागरिक व सामाजिक जीवन में शिल्पकारों (आर्यों) को वे सब अधिकार प्राप्त हो गये जो सवर्ण विटों को प्राप्त थे। यह कानून १९४७ में बना था।

शिल्पकारों में वैदिक धर्म का प्रचार कुमायूँ के पार्वत्य क्षेत्र में भी हुआ। गढ़वाल के समान वहाँ भी डूमों का अच्छी-बड़ी संख्या में निवास था। आर्य समाज के प्रचारकों ने उन्हें

❑❑❑

१८५७ की क्रान्ति का प्रथम शहीद - मंगल पाण्डे

शहीद मंगल पाण्डे

कहा जाता है कि पूरे देश में एक ही दिन ३१ मई १८५७ को क्रान्ति आरम्भ करने का निश्चय किया गया था, पर २९ मार्च १८५७ को बैरकपुर छावनी के सिपाही मंगल पाण्डे (१९ जुलाई १८२७-८ अप्रैल १८५७) की विद्रोह से उठी ज्वाला वक्त का इन्तजार नहीं कर सकी और प्रथम स्वाधीनता संग्राम का आगाज हो गया। मंगल पाण्डे को १८५७ की क्रान्ति का पहला शहीद सिपाही माना जाता है। २९ मार्च १८५७, दिन रविवार-उस दिन जनरल जान हियर्से अपने बँगले में आराम कर रहा था कि एक लेफ्टिनेन्ट बदहवास सा दौड़ता हुआ आया और बोला कि देसी लाइन में दंगा हो गया। खून से रँगे अपने घायल लेफ्टिनेन्ट की हालत देखकर जनरल जान हियर्से अपने दोनों बेटों को लेकर ३४वीं देसी पैदल सेना की रेजीमेन्ट के परेड ग्राउण्ड की ओर दौड़ा। उधर धोती-जैकेट पहने ३४वीं देसी पैदल सेना का जवान मंगल पाण्डे नंगे पाँव ही एक भरी बन्दूक लेकर क्वाटर गार्ड के सामने बड़े ताव में चहलकदमी कर रहा था और रह-रह कर अपने साथियों को ललकार रहा था- "अरे! अब कब निकलोगे? तुम लोग अभी तक तैयार क्यों नहीं हो रहे हो? ये अंग्रेज हमारा धर्म भ्रष्ट कर देंगे। आओ, सब मेरे पीछे आओ। हम इन्हें अभी खत्म कर देते हैं।" लेकिन अफसोस किसी ने उसका साथ नहीं दिया। पर मंगल पाण्डे ने हार नहीं मानी और अकेले ही अंग्रेजी हुकूमत को ललकारता रहा। तभी अंग्रेज सार्जेंट मेजर जेम्स थार्नटन ह्यूसन ने मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। यह सुन मंगल पाण्डे का खून खौल उठा और उसकी बन्दूक गरज उठी।

सार्जेंट मेजर ह्यूसन वहीं लुढ़क गया। अपने साथी की यह स्थिति देख घोड़े पर सवार लेफ्टिनेंट एडजुटेंट बेम्पडे हेनरी वाँग मंगल पाण्डे की तरफ बढ़ता है, पर इससे पहले कि वह उसे काबू कर पाता, मंगल पाण्डे ने उस पर गोली चला दी। दुर्भाग्य से गोली घोड़े को लगी और वाँग नीचे गिरते हुये फुर्ती से उठ खड़ा हुआ। अब दोनों आमने-सामने थे। इस बीच मंगल पाण्डे ने अपनी तलवार निकाल ली और पलक झपकते ही वाँग के सीने और कन्धे को चीरते हुये निकल गई। तब तक जनरल जान हियर्से घोड़े पर सवार परेड ग्राउण्ड में पहुँचा और यह दृश्य देखकर भौंचक्का रह गया। जनरल हियर्से ने जमादार ईश्वरी प्रसाद को हुक्म दिया कि मंगल पाण्डे को तुरन्त गिरफ्तार कर लो पर उसने ऐसा करने से मना कर दिया। तब जनरल हियर्से ने शेख पल्टू को मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। शेख पल्टू ने मंगल पाण्डे को पीछे से पकड़ लिया। स्थिति भयावह हो चली थी। मंगल पाण्डे ने गिरफ्तार होने से बेहतर मौत को गले लगाना उचित समझा और बन्दूक की नाली अपने सीने पर रख पैर के अँगूठे से फायर कर दिया। लेकिन होनी को कुछ और ही मंजूर था, सो मंगल पाण्डे सिर्फ घायल होकर ही रह गया। तुरन्त अंग्रेजी सेना ने उसे चारों तरफ से घेर कर बन्दी बना लिया और मंगल पाण्डे के कोर्ट मार्शल का आदेश हुआ। अंग्रेजी हुकूमत ने ६ अप्रैल को फैसला सुनाया कि मंगल पाण्डे को १८ अप्रैल को फाँसी पर चढ़ा दिया जाये। पर बाद में यह तारीख ८ अप्रैल कर दी गयी, ताकि विद्रोह की आग अन्य रेजिमेण्टों में भी न फैल जाये। मंगल पाण्डे के प्रति लोगों में इतना सम्मान पैदा हो गया था कि बैरकपुर का कोई जल्लाद फाँसी देने को तैयार नहीं हुआ। नतीजतन कलकत्ता से चार जल्लाद बुलाकर मंगल पाण्डे को ८ अप्रैल, १८५७ को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। मंगल पाण्डे को फाँसी पर चढ़ाकर अंग्रेजी हुकूमत ने जिस विद्रोह की चिंगारी को खत्म करना चाहा, वह तो फैल ही चुकी थी और देखते ही देखते इसने पूरे देश को अपने आगोश में ले लिया।

❑❑❑

दयानन्द का दिव्य विचार

सुधा सिन्धु सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि दयानन्द का दिव्य विचार।
हुआ हो रहा इस अमृत से, मानव पर अगनित उपकार।।
पाखण्डों के लिये प्रचण्ड सा मिला धधकता ज्वाला है।
हलचल मच गई दुनिया में हमला हुआ निराला है।।
मत मजहब की पोल खुल गई, जहाँ हुआ इसका प्रचार।
भूत-प्रेत भैरव शीतला, डाकिनी से हुई सुरक्षा।।
ज्ञान कर्म और उपासना विज्ञान समन्वित यह शिक्षा।
नास्तिक, मिथ्या, ठग विद्या पर, होने लगा तीक्ष्ण प्रहार।
अनाचार, अज्ञान, अविद्या पर कर डाला वज्राघात।
इसके सम्मुख अधर्मियों के रुकते गये हरेक उत्पात।।
बन्द अकल के ताले खुल गये हुआ प्रकाशन जन संचार।
सत्य सनातन वेद ज्ञान से धर्म का करना हो निश्चय।।
पढ़ने वालों को पथ मिलता होती रहती सदा विजय।
रोगी मानवता का हरदम इससे ही होता उपचार।।
आज जगत् में फैल रहा है देवासुर जैसी संग्राम।
निर्विवाद यह सुख शान्ति का मानव हित सुन्दर प्रोग्राम।।
विषम समय में हर पाठक को ग्रहण कराता सत्याचार।
मानव के निर्माण के खातिर इसमें है अनुपम सन्देश।।
वैर-बुद्धि को दूर भगाये सत्य युक्त देकर उपदेश।
आत्मा को प्रिय लगने वाला वेद ही तो इसका आधार।।

संयज सत्यार्थी, नेमदारगंज नवादा, बिहार

विश्व पृथ्वी दिवस

आज पृथ्वी दिवस है – २२ अप्रैल ! ये जीवन दायिनी धरती माँ हमें सब कुछ देती रही है और आज भी दे रही है। लेकिन जब हम उसके पास कुछ बचने दें। उसके श्रृंगार वृक्षों को हमने उजाड़ दिया, उसके जल स्रोतों को हमने इस तरह से दुहा है कि वे भी अब जलविहीन हो चले हैं। इसके गर्भ में इतने परीक्षण हम कर चुके हैं कि उसकी कोख अब बंजर हो चुकी है। अब भी हम उसके दोहन और शोषण से थके नहीं हैं। अब भी हम ये नहीं सोच पा रहे हैं कि जब ये नहीं रहेगी तो क्या हम किसी नए ग्रह की खोज करके उस पर चले जायेंगे. जैसे कि गाँव छोड़ कर शहर आ गए। वहाँ अब कुछ भी नहीं रह गया है – खेतों को बेच कर मकान बनवा लिए। अब खाने की खोज में शहर आ गए। कुछ न कुछ करके गुजारा कर लेंगे।

हम क्यों रोते हैं कि अब मौसम बदल चुके हैं, तापमान निरंतर बढ़ता चला जा रहा है। इसके लिए कौन दोषी है ?हम ही न, फिर रोना किस बात का है ? हमारी हवस ने, धरती को जो कभी सोना उगला करती थी, केमिकल डाल डाल कर बंजर बना दिया। फसल अच्छी लेने के लिए उसको बाँझ बना दिया। ये कृत्रिम साधनों से जो उसका दोहन हो रहा है उससे हमने गुणवत्ता खोयी है।

हर साल २२ अप्रैल को धरती को बचाने के लिए और उसके बचाव के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए इस दिवस का आयोजन किया जाता है। पूरी दुनियाँ इस धरती को माँ नहीं कहती, कालांतर में आदमी सुबह उठकर उस पर पैर रखने से पहले उसके स्पर्श को अपने मस्तक पर लगता था, ये मैंने अपने घर में ही देखा है। खेतों की पूजा होते देखी है। विश्व में इसको एक ग्रह ही माना जाता है और फिर भी विश्व के किसी और देशवासी ने इस ग्रह को बचाने के लिए ये मुहिम शुरू की थी। ये व्यक्तित्व है जो अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के लिए विख्यात है – अमेरिका के पूर्व सीनेटर गेलार्ड नेल्सन–

अंततः २२ अप्रैल १९७० को २ करोड़ के विशाल जन–समुदाय के बीच पहला पृथ्वी दिवस मनाया गया। जब ये काम ४० वर्षों से चल रहा है तब हमारी पृथ्वी की ये हालत है अगर हम अब भी नहीं चेते तो ये ज्वालामुखी, भूकंप, सुनामी और भूस्खलन – जो इस पृथ्वी की पीड़ा के प्रतीक हैं, इस पृथ्वी को नेस्तनाबूद कर देंगे। ये मानव जाति जो अपने शोधों पर इतरा रही है, कुछ भी शेष नहीं रहेगा। इसलिए आज ही और इसी वक्त संकल्प लें कि पृथ्वी को संरक्षण देने के लिए जो हम कर सकेंगे करेंगे और जो नहीं जानते उन्हें इससे अवगत कराएँगे या फिर अपने परिवेश में इसके विषय में जागरूकता फैलाने के लिए प्रयास करेंगे। जब धरती माँ नहीं रहेगी तो उसकी हम संताने होंगे ही कहाँ ? इस लिए हमें भी रहना है और इस माँ को भी हरा भरा रखना है ताकि वह खुश रहे और हम भी खुश रहें.

प्रस्तुतकर्ता – रेखा श्रीवास्तव

❑❑❑

संरक्षक मण्डल - सत्यार्थ सन्देश (₹११,०००)

स्वामी (डॉ.) ओम् आनन्द सरस्वती
चित्तौड़

स्वामी (डॉ.) सर्वानन्द सरस्वती
हिण्डौन

श्री रतिराम आर्य
सिलीगुड़ी

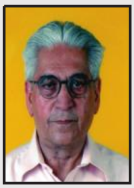
श्री भवानीदास आर्य
जयपुर

श्री आनन्द कुमार आर्य
कोलकाता

श्री दीनदयाल गुप्त
कोलकाता

श्री बी.एल. अग्रवाल
जयपुर

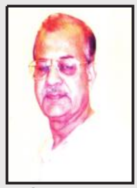
डॉ. देवव्रत आर्य
मुम्बई

श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल
अहमदाबाद

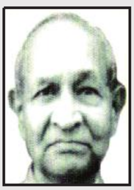
श्री चन्दूलाल अग्रवाल
अहमदाबाद

श्री मिठाईलाल सिंह
मुम्बई

श्री आर. डी. गुप्ता
गाजियाबाद

श्री नारायणलाल मित्तल
जयपुर

श्रीमती पुष्पा गुप्ता
जयपुर

श्रीमती शारदा गुप्ता
जयपुर

(स्व.) पं. पन्नालाल पीयूष
उदयपुर
पावन स्मृति में – सुकीर्ति पीयूष(पुत्र)

(स्व.) आचार्य प्रेमभिक्षु
मथुरा
पावन स्मृति में - [illegible] (पुत्र)

श्री मोती लाल आर्य
आबूरोड़

"[illegible]"
श्रीमती सरोज वर्मा
जयपुर

प्रो. आई. वी. भाटिया
नासिक

श्री राजकुमार गुप्ता एवं श्रीमती सरला गुप्ता
जयपुर

आर्य समाज
गाँधीधाम
गुजरात

आर्य परिवार
संस्था
कोटा-राजस्थान

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत द्वारा प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डॉ. भवानी लाल भारतीय का सम्मान किया गया।

स्वामी दयानन्द मार्ग, अलवर स्थित आर्य समाज में एक भव्य समारोह में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान माननीय कैप्टन देवरत्न जी आर्य को 'कर्मवीर आर्य श्रेष्ठ' की उपाधि प्रदान की गई। सम्मान पत्र कैप्टन साहब के कनिष्ठ भ्राता माननीय सोमरत्न जी द्वारा प्राप्त किया गया।

नवलखा महल (सत्यार्थ प्रकाश भवन)

यह भवन है, विश्वविख्यात् पर्यटन स्थल, झीलों की नगरी, उदयपुर के हृदय स्थल में अवस्थित गुलाब बाग में, युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की स्मृति को संजोए, पवित्र आकर्षक स्मारक, नवलखा महल। जहाँ मेवाड़ नरेश महाराणा सज्जनसिंह जी के निमंत्रण पर लगभग साढ़े छः मास विराजकर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कालजयी ग्रन्थ रत्न सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन सम्पूर्ण किया। जिसे श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने भव्यतम आकर्षक रूप प्रदान कर वैदिक धर्म (भारतीय संस्कृति) के प्रचार का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने का प्रयास किया है।

नवलखा महल स्थित दर्शनीय चित्र-दीर्घा

प्रमुख आकर्षणः-

१. समृद्ध पुस्तकालय एवं वाचनालय।
२. सत्यार्थ प्रकाश रचनाकक्ष।
३. प्रभु भक्ति व महर्षि महिमा के गीतों की धुनों पर थिरकते व रंगीन आभा बिखेरते रंगीन फव्वारे।
४. भव्य यज्ञशाला जिसके प्रांगण में एक साथ ५०० व्यक्ति बैठ सकते हैं।
५. ६४ सुन्दर तैल चित्रों से युक्त,महर्षि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालती भव्य दीर्घदीर्घा।
६. जीर्ण-शीर्ण नवलखा महल को वर्तमान स्वरूप प्रदान करके सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले,६० लाख रुपये न्यास को दान करने वाले (स्मृति शेष) पूज्य स्वामी तत्त्वबोध सरस्वती,अध्यक्ष न्यास (पूर्व नाम श्री हनुमान प्रसाद चौधरी) की साधना स्थली-साधना सदन।
७. ऋषि-दर्शन मंत्रमुग्ध कर देने वाला दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम (समय ११ से ५ बजे)।
८. घूमती रैक्स में सत्यार्थ प्रकाश के सभी २३ भाषाओं में उपलब्ध अनुवादों की प्रदर्शिनी।
६. महाशय धर्मपाल जी के अनुदान से निर्मित भव्य वातानुकूलित मल्टी मीडिया माता लीलावन्ती सभागार।

सत्यार्थप्रकाश प्रचार सहयोग निधि

- सत्यार्थ प्रकाश से उत्कृष्ट कोई ग्रन्थ नहीं जिसके प्रकाशन में आपकी पुण्य दान राशि का प्रयोग हो। सत्यार्थ प्रकाश प्रचार हेतु,कम राशि में अधिक संख्या में यह महान् ग्रन्थ जन-जन के हाथों में पहुँच सके,एतदर्थ निम्न योजना निर्मित की गई है:-
- सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) की द्वितीय आवृत्ति छपने में है। कृपया निम्नानुसार सहयोग कर लागत मूल्य से आधी कीमत में सत्यार्थ प्रकाश का दिया जाना सुनिश्चित करें। आपके द्वारा सहयोगार्थ प्रदान की गई राशि के समक्ष अंकित प्रतियों पर आपका अथवा आपके किसी प्रियजन का चित्र ग्रन्थ पर दिया जावेगा।

राशि	प्रतियों की संख्या	राशि	प्रतियों की संख्या
एक लाख रु.	दस हजार	७५०००	७५००
५००००	५०००	२५०००	२५००
१००००	१०००	इससे स्वल्प राशि देने वाले दानवीरों के नाम ग्रन्थ में अंकित किये जायेंगे।	

आपका दान आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अंतर्गत करमुक्त होगा। राशि न्यास के नाम ड्राफ्ट या चैक द्वारा भेजें अथवा यूनियन बैंक ऑफ इंडिया,उदयपुर खाता क्रमांक ३१०१०२०१००४१५१८ में जमा कर सूचित करें।

निवेदक

भवानीदास आर्य, मंत्री-न्यास
भंवरलाल गर्ग, कार्यालय मंत्री
डॉ.अमृत लाल तापड़िया, उपमंत्री-न्यास

जिन सज्जनों को यह पत्रिका प्राप्त हुई है, वे तो अवश्य ही 'सत्यार्थ - सन्देश' परिवार से तुरन्त जुड़ने की कृपा करें।

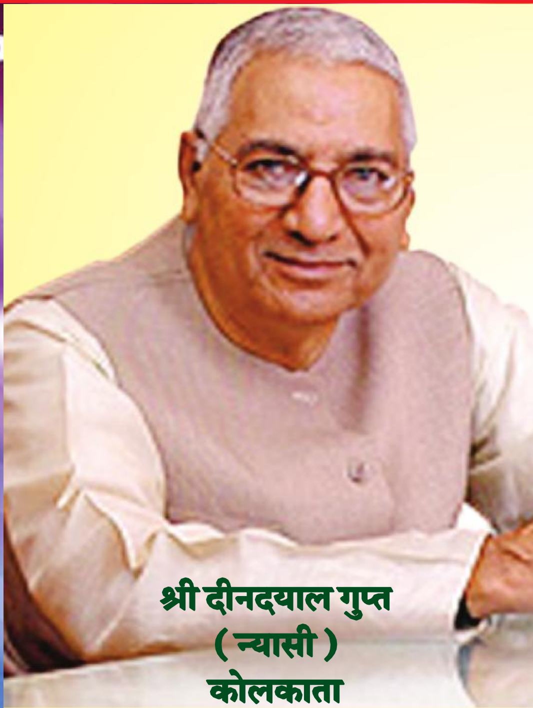

श्री दीनदयाल गुप्त
(न्यासी)
कोलकाता

एक अत्यन्त सफल उद्योगपति के रूप में (डालर इन्डस्ट्रीज लि.) सुख्यात्, माननीय दीनदयाल गुप्त जी आर्य जगत् में एक अत्यन्त उदार, विनम्र, मृदुभाषी, मिलनसार व्यक्तित्व के रूप में पहचाने जाते हैं। इनके व्यक्तित्व की सहजता सौम्यता यह अहसास ही नहीं होने देती कि आप एक ख्यातनाम उद्योगपति से मिल रहे हैं। कोई आडम्बर नहीं, केवल पवित्र और निश्छल मन।

गुरुकुलीय आर्ष शिक्षा पद्धति व गौशालाओं के प्रति आपका रुझान प्रसिद्ध है। आप श्रीमती परोपकारिणी सभा के कार्यकारी अध्यक्ष हैं। न्यास आपके मार्गदर्शन व सहयोग में प्रगति के पथ पर अग्रसर है। सत्यार्थ-सन्देश परिवार आपके निरामय दीर्घायुष्य की कामना करता है।

आर्य समाज में आज समर्पित युवाओं की न्यूनता अनुभव की जाती है। हमारे न्यास के उपाध्यक्ष भाई विजय शर्मा, अपने पूज्य पिता श्रद्धेय रतिराम शर्मा जी से वैदिक संस्कृति के प्रति सर्वात्मना समर्पण के भाव विरासत में प्राप्त कर, भीलवाड़ा (राज.) में निवास करते हुऐ वहाँ आर्य समाज के प्रधान के रूप में माँ आर्यसमाज की सेवा में संलग्न हैं। विजय जी ने भीलवाड़ा में आने के पश्चात् सिल्वरटोन सिंथेटिक्स, किरन मिनिरल इण्डस्ट्रीज व ओमेक्स इन्सुलेशन जैसे उद्योगों की स्थापना की है। जहाँ तक न्यास का प्रश्न है आपके संरक्षण के बारे में जितना लिखा जाय न्यून ही है। केवल इतना ही लिखना संभवतः पर्याप्त होगा कि कठिन से कठिन समय में संकट-मोचन का कार्य करने में कभी शिथिल नहीं रहे। सत्यार्थ-सन्देश परिवार आपकी चतुर्दिक उन्नति की कामना करता है।

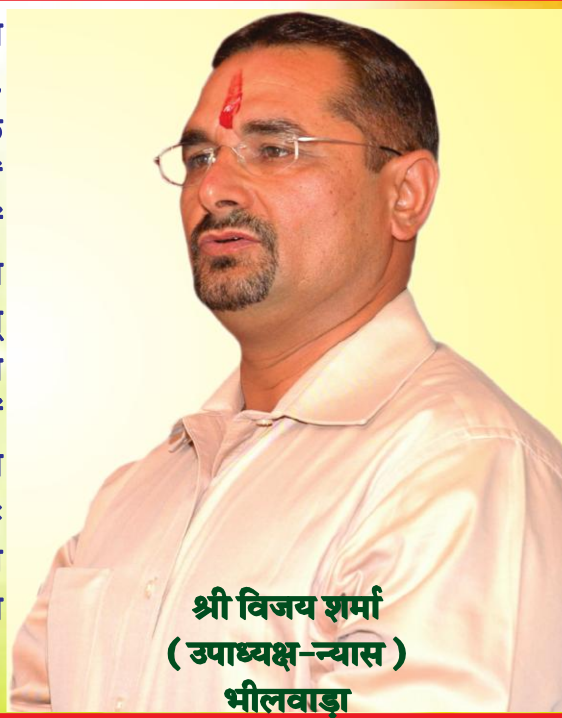

श्री विजय शर्मा
(उपाध्यक्ष-न्यास)
भीलवाड़ा

होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि करके शुद्ध
पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो
अत्यंत उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परमसुख होता है
विश्व पृथ्वी दिवस